सम्पादकीय

'आषाढभूति' नास्तिकता पर आस्तिकता की विजय का अभिव्यजक एक प्रवन्ध काव्य है। हिन्दी भाषा मे छन्दोवद्ध प्रवन्ध-काव्यो का प्रचलन ही मुख्यत अव तक हुआ है। प्रस्तुत काव्य नाना रागोपेत गीतिकाओ मे रचा गया है। वीच-बीच मे दोहा, सोरठा-गीतक छन्द आदि भी रखे गए हैं। जैन-साहित्य परम्परा मे यह शैली वहुत काल से विकसित होती रही है। सस्कृत-काव्य शैली को अपनाकर दिग्गज कवियो ने चन्द्रचरित्र जैसे महाकाव्य और अनेकानेक काव्य व खण्ड-काव्य राजस्थानी भाषा मे रचे हैं। रामायण और महाभारत जैसे महाग्रन्थ भी गीतिवद्ध कर दिए गए हैं। विगत काल मे और अव भी इस साहित्य का समाज के लिए महत्त्वपूर्ण उपयोग रहा है। अधिकाशत वे ऐसी शैली मे रचे गए है जो विद्वज्जन भोग्य होने के साथ-साथ जनकाव्य भी बन गए हैं। धर्म-सभाओ मे विद्वान् वक्ताओ द्वारा होने वाला इनका सरसवाचन सर्व-साधारण को काव्यानुभूति कराने के साथ-साथ सत्य, शिव, की ओर भी अग्रसर करता रहा है। हिन्दी-साहित्य की प्रचलित धाराओ मे इस शैली का प्रादुर्भाव अब तक नही दीख पडता। आचार्य श्री तुलसी का यह प्रबन्ध-काव्य इस दिशा मे एक अभिनव वीजारोपण होगा। 'आषाढभूति' का प्रसग बहुत ही सरस और घटनात्मक है। इसके मुख्य दो फलित कहे जा सकते हैं—नास्तिकता के परिणामस्वरूप व्यक्ति की मनोदशा भोगाभिमुख होकर कहा तक निर्घृण और बर्बर हो जाती है। शिष्य गुरु के उपकार से कैसे उऋण हो सकता है।

भगवान श्री महावीर ने स्थानागसूत्र मे बताया है—तीन व्यक्तियो का उऋण हो जाना बहुत कठिन है—

१ पिता से पुत्र का।

२ लालन-पालन कर अपने ही समान वना देने वाले महाजन से अनाथ वालक का।

३ गुरु से शिष्य का।

कोई सुपुत्र प्रतिदिन माता-पिता का मर्दन, स्नान, शरीर-सज्जा और अनुकूल भोजन-व्यवस्था से सेवा करता रहे, आवश्यकतावश उन्हे कावड मे विठाकर यत्र-तत्र भ्रमण कराता रहे, जीवन भर भी ऐसा करके वह माता-पिता से उऋण नही हो पाता। केवल वह उऋण हो सकता है—माता-पिता को धर्म-वोध देकर।

अनाथ बालक जिस महाजन के यहा पला, व्यवसाय-कुशल हुआ और जिसके साहचर्य से लाखो का द्रव्य अर्जित किया, समय पडने पर वह अपने उस पालक महाजन को अपना सब कुछ भी प्रत्यर्पित कर दे तो भी वह उसके उपकार से उऋण नही हो सकता ।

शिष्य अपने धर्माचार्य की जीवन-भर उत्कट से उत्कट परिचर्या करता रहे, कुष्ठादि रोग की अग्लान भाव ने मरहम पट्टी करता रहे तो भी वह उस धर्माचार्य के उपकार से उऋण नही हो जाता । वह केवल उऋण हो सकता है—धर्मच्युत गुरु को पुन धर्मस्थित करके ।

अगुत्तरनिकाय मे इसी विषय पर गौतम बुद्ध कहते हैं—भिक्षुओ ! सौ वर्ष कोई पुत्र एक कन्धे पर माता को और एक कन्धे पर पिता को ढोता रहे, स्नान, तेल-मर्दन, हाथ-पैर दबाना आदि सब कुछ करता रहे तो भिक्षुओ ! वह माता-पिता का न उपकारक होता है और न प्रत्युपकारक ।

प्रस्तुत कथा प्रसग मे उक्त दोनो तथ्य बहुत ही सजीव होकर सामने आते है । आचार्य आषाढभूति एक दिन मुमुक्षु के रूप में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहिंसा का पालन करते हैं और एक दिन नास्तिक होकर छ अबोध बच्चो की निर्मम हत्या से हाथ रग लेते है । अन्त मे उनका प्रिय शिष्य विनोद देवयोनि से आकर चामत्कारिक ढग से प्रतिबोध देकर पुन उन्हे धर्म मे स्थिर करता है ।

कथा-प्रसग

आचार्य आषाढभूति अपने सौ शिष्यो के साथ चातुर्मासिक प्रवास के लिए इतिहास प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी मे आए । बहुश्रुत और प्रभावशाली आचार्य के आगमन पर जनसागर उमड पडा । आचार्य की आकर्षक व्याख्यान शैली पर मुग्ध होकर सहस्रो की सख्या मे लोग प्रतिदिन उपस्थित होने लगे । आस्तिकता का मडन और नास्तिकता का खडन प्रवचन का प्रमुख विषय था। आचार्य की ओजस्विनी और तर्कपूर्ण प्रतिपादन शैली से अनेको नास्तिक भी आस्तिक हो गए ।

नगर मे महामारी का प्रकोप हुआ । बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष धडाधड मरने लगे । घर और परिवार उजडने लगे । आचार्य आषाढभूति पर भी विपत्ति के बादल मडराए । एक-एक कर शिष्य काल-कवलित होने लगे । आचार्य आषाढभूति प्रत्येक शिष्य के मरण-प्रसग पर उसे धर्म-समाधि देते और कहते—शिष्य ! तुमने बडी धर्माराधना की है, अवश्य तुम देवयोनि मे जन्म लोगे । मेरा तुम्हारे प्रति अमिट वात्सल्य है और तेरी मेरे प्रति अटूट श्रद्धा । देवयोनि मे एक बार के लिए तो अवश्य आना और मेरे से मिलना । एक-एक कर निन्यानवें शिष्य चले गए, पर एक भी देवयोनि से वापस आकर उनसे नही मिला । परम आस्तिकवादी आचार्य की श्रद्धा

डगमगा उठी। दुर्भाग्यवश उनका प्रियतम और कुमार शिष्य विनोद भी महामारी के चगुल मे फस गया। आचार्य आषाढभूति ने अपनी छल-छलाई आखो से उसकी ओर देखते हुए कहा—विनोद! तुम भी चले जा रहे हो, मेरा क्या होगा? और शिष्यो की तरह तुम भी मुझे भूल जाओगे न? इतने शिष्यो मे से एक भी लौटकर मिलने को नही आया। क्या मैं यह सच न मान लू कि स्वर्ग नरक कुछ भी नही है?'

शिष्य विनोद का गला भर आया। बोला—गुरुदेव यह क्या? आस्तिकता का मेरु भी इस प्रकार डोल सकता है? और शिष्य नही आए पर मैं अवश्य स्वर्ग से लौटकर आऊगा और आपकी भावनाओ को पुन आस्तिकता मे स्थिर कर अपने आपको उऋण बनाऊगा। यही कहते-कहते विनोद ने सदा के लिए आखे मूद ली।

एक प्रहर बीत गया। विनोद आया तो नही। देवो की द्रुतगति मे इतना समय तो नही लगता, इसी चिन्ता मे आषाढभूति बैठे हैं। अहोरात्र निकल गया पर चेले के आने की कोई आहट उन्हे सुनाई न दी। धैर्य का बाध टूट गया। शास्त्र मिथ्या है। तर्क प्रयोजन शून्य है। परलोक हो और मेरा एक भी शिष्य न आए? विनोद भी मुझे भूल जाए, यह हो नही सकता। मैं ठगा गया। पुनर्जन्म की चिन्ता मे मैंने अपने इस जन्म को भी धूलिसात् कर दिया। मैं नगे पैर नगे सिर जन्म भर भटकता रहा। रूखा-सूखा जो मिला खाया। खैर जो भी हुआ। बीत गई वह बात गई। अब भी मैं भौतिक सुखोपभोग का रस ले सकू तो जीवन सार्थक हो। तत्क्षण उठे और उपाश्रय के बाहर चल पडे। चरणो की द्रुतगति के साथ चिन्तन भी द्रुतगति से चल रहा था। मुझे दूर अपरिचित प्रदेश मे जाना है और भोगोपभोग की सभी सामग्रियो को जुटाना है।

शिष्य विनोद का देव सिंहासन डोल उठा। अवधिज्ञान लगा कर उसने देखा—मेरे गुरु परम नास्तिक होकर वासना के गर्त मे गिर पडने के लिए जा रहे हैं। अपना कर्तव्य सूझा। सोचा, गुरु मे दया और लज्जा का थोडा भी भाव अवशेष रहा है तो अवश्य मैं उन्हे बचा लूगा। मन मे सकोच था, गुरु कहेंगे—समय पर क्यो नही आया? मेरी विवशता का भान मैं उन्हे भी करा दू। भौतिक विषयो मे व्यक्ति किस प्रकार समय की नियमितता को नही निभा पाता। देव-माया से उसने अपने गुरु के मार्ग पर एक अनोखा नाटक रच डाला। गुरु देखने मे लीन हो गए। देव-शक्ति से उन्हे भूख, प्यास, आदि शरीर धर्मो ने जरा भी बाधित नही किया। छ महीने तक वे रमणीय नाटक देखते ही रहे। उन्हे यह भान ही नही हुआ, मैंने यहा अपना आधा वर्ष पूरा कर दिया है। नाटक पूरा हुआ और गुरु आगे चल पडे। शिष्य देव का प्रतिबोध प्रयत्न भी चालू था। घने जगल मे उन्हे छ सुकुमार बालक मिले। वे गहनो से लदे-फदे थे। आचार्य आषाढभूति को देखते ही वे पुलकित होकर उनके चरणो

में गिर पडे। आचार्य ने पूछा—कौन हो बच्चो ? क्या नाम हैं तुम्हारे ? वे बोले—आर्य ! हम आपही के श्रावको के बालक हैं। हमारे नाम पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति और त्रस हैं। अपने माता-पिता के प्यारे व इकलौते बच्चे हैं। उनके साथ ही हम वन-क्रीडा के लिए आए थे, पर न जाने वे कहा रह गए हैं, हम कहा आ गए। दूर-दूर तक का जगल हम घण्टो से छान रहे है, पर उनका कोई पता नही।

आषाढभूति सोचने लगे—बालक बहुमूल्य गहनो से लदे हैं। मुझे अपना घर-बार रचाने के लिए धन की आवश्यकता होगी। धन-प्राप्ति का ऐसा सुखद योग फिर कहा मिलेगा ? केवल गहने लूगा तो बात फूटेगी। इन बालको को मार ही डालू तो ये सारे गहने मैं यो ही पचा सकता हू। हृदय मे नास्तिकता तो थी ही। एक-एक कर सुकुमार बालको के गले पर हाथ मारा और सबके गले मसोस दिए। गहने उतार लिए और अपनी झोली मे रहे पात्र मे डाल लिए। लाशो को किसी एक रन्ध्र मे डाल कर कि यहा कोई नही देख सकेगा, निडर हो गए।

देव शिष्य सोचने लगा—गुरु के हृदय मे दया का तो लेश भी नही रह गया है। छह प्रकार के जीव ससार मे होते हैं। एक-एक बालक ने अपने नाम के छद्म मे छवो कायो को याद दिला दिया, पर गुरु का हाथ एक क्षण के लिए भी झपका नही। अब मुझे देखना है, इनमे लज्जा का भाव भी अवशेष है या नही ?

आचार्य कोसो दूर निकल गए। किसीने उन्हे रोका नही, टोका नही। कदम-कदम पर अपने साहस का गर्व उनके मन मे उभर रहा था। अकस्मात् उन्होने देखा सामने एक विस्तृत पडाव लगा है। रसोइया बन रही हैं। लोग आमोद-प्रमोद मे इधर-उधर घूम रहे हैं। दूसरे ही क्षण देखा, ये सब तो जैन श्रावक ही मालूम पड रहे हैं। ज्योहा इन्होने मुझे देखा है, बडे उत्साह से हाथ जोडते, वन्दना करते मेरी ओर ही आ रहे हैं। अधिक सोचने का समय कहा, श्रावक आए और आचार्य के चरणो मे गिर पडे। कुशल प्रश्न पूछा और अपने भाग्य को सराहने लगे। धन्य हैं गुरुदेव आपने अप्रत्याशित दर्शन दिए। आषाढभूति मन मे लज्जित से थे। उनसे न कहा गया कि मैं अब मुनि-धर्म मे नही हू। गम्भीर भाव से अपनी प्रतिष्ठा रख लेने के लिए आचार्य ने कहा—उज्जयिनी मे महामारी का प्रकोप हुआ। सारे शिष्य चल बसे। मुझे भी चातुर्मास मे विहार करना पडा। सहज रूप से तुम्हे भी दर्शन-लाभ मिल गया।

आषाढभूति सोच रहे थे, शीघ्रातिशीघ्र इस पडाव के उस पार पहुच जाऊ, यही मेरे लिए श्रेयस्कर है। परन्तु देव-माया के ये श्रावक उनकी झोली खुलवाना ही चाहते थे। श्रावक बोले—गुरुदेव ! बडी दूर से आए हैं, हमे पात्र-दान का लाभ दें।

आषाढ़भूति (मन ही मे—यह भी एक मुसीबत आई है) प्रकट—श्रावकजी !

आहार की तो मेरे अभी जरा भी खप नही है ।

श्रावक—गुरुदेव ! ऐसा न कहे, क्या हम ऐसे हतभागे है कि गगा घर आने पर भी प्यासे ही रह जाएगे ।

आपाढभूति—समझदार श्रावक अनावश्यक हठ नही किया करते । जैसा देश काल हो वैसे मान लेना चाहिए ।

श्रावक—गुरुजन ! देश, काल के साथ कुछ भक्ति भी देखा करते है । हम तो आपके बच्चे है । आपकी झोली जबरदस्ती खोल कर भी आपके पात्र मे तो कुछ न कुछ तो डाल ही देंगे ।

आपाढभूति झोली को सम्भालने और दृढता से पकडने लगे ही थे कि कुछ मुह लगे श्रावको ने गुरुदेव ! गुरुदेव ! कुछ तो कृपा करिए, कहते-कहते बलात् झोली खोल दी । गहनो का भरा पात्र सबके सामने आ गया । सब विस्मित ! अरे ! यह क्या ? हाय ! हाय ! साधु के वेश मे यह ढोग !

आषाढभूति की दशा देखते ही बनती थी । चेहरा सकपका गया । आखो के आगे अन्धेरी आने लगी । हृदय की धडकन बढ गई । सोचने लगे धरती फट जाए तो अन्दर चला जाऊ ।

बला पर बला और आ टपकी । बच्चो की खोज मे निकले खोजी निराश होकर वहा पहुचे । बच्चो के मा बाप जो अत्यन्त आतुर और व्याकुल हो रहे थे, उनकी भी दृष्टि उन गहनो पर पडी । यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया कि बच्चो को मारकर गहने लिए गए हैं । मा-बाप हाय-हाय कर रोने लगे, छाती-माथा कूटने लगे । दूसरे लोग यह सब जान कर और अधिक बोखला उठे । आषाढभूति आख मूद कर प्रस्तर मूर्ति की तरह खडे ही रह गए । क्योकि कर्त्तव्यमूढता उन्हे खाए जा रही थी । कुछ ही क्षणो बाद हृदयद्रावी कोलाहल शान्त हुआ । आचार्य के कानो मे मधुर-सी आवाज आई—मैं आपका प्रिय शिष्य विनोद । आखे खुल पडी । देखा न कही पडाव है, न गहने । विनोद नतमस्तक सामने खडा है । गुरु ने समझा यह सारी ही माया इसकी ही थी । शिष्य पर रज भी हुआ और प्रमोद भी । आचार्य बोले—विनोद ! मेरी नैया डुबाकर ही तुम आए ।

विनोद—आर्यवर ! भौतिक सुखो मे सलग्न देवो को समय का कोई ध्यान नही रहता । वहा का एक ही नाटक यहा के सहस्रो वर्ष पूरे कर देता है । मैं वचन-बद्ध था इसलिए आ सका । अन्य देव आना चाह कर भी पुन वहा के पौद्गलिक आनन्द मे ऐसे लीन होते हैं कि दुबारा चाहने तक यहा की पीढिया पूरी हो जाती हैं ।

याद करें, मार्ग मे आपने भी एक नाटक देखने मे छव माम पूरे किए हैं । देखिए ! सूर्य अपना अयन बदल चुका है ।

आषाढभूति पुन परम आस्तिक और भव-मुमुक्षु मुनि बने।

उक्त कथा-विवरण निशीथसूत्र की चूर्णि व उत्तराध्यन की अर्थ कथाओ मे मिलता है। परिषह अध्ययन मे सम्यक्त्व परिषह के उदाहरण रूप मे वहा इसका उपयोग किया गया है। आचार्यश्री तुलसी की प्रस्तुत कृति केवल कथा का पद्यानुवाद ही नही है। इसमे यथा प्रसग दर्शन, अध्यात्म, लोक-व्यवहार के नाना उपयोगी प्रसग बहुत ही रोचक शैली से सयोजित किए गए हैं।

हेतु-प्रधान न्याय की भाषा मे पुनर्जन्मवाद की सिद्धि का वर्णन आचार्य आषाढभूति की भाषा मे निम्न प्रकार प्रस्फुटित होता है—

यदि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पृथगस्तित्व नहीं?
चेतनता धर्म, कहो किसका, गुण अननुरूप होता न कहीं?
चेतना शून्य क्यो मृत शरीर? धर्मी से धर्म भिन्न कैसे?
यह जीव स्वतन्त्र द्रव्य इसकी सत्ता है स्वय सिद्ध ऐसे॥

है पुन्य पाप का द्योतक यह वैषम्य विश्व का स्पष्ट-स्पष्ट।
प्रत्यक्ष प्रमाणित कर्मवाद, करते ससृति के सौख्य, कष्ट॥
है नहीं जीव का जन्मान्तर, यह निर्णय प्रश्रय पाएगा।
कृतनाश अकृत का भोग, दोष तो पग-पग पर आ जाएगा॥

चार्वाक नहीं चिन्तन देता, साप्रतिक सुखों का यह केवल।
आश्वासन मात्र प्रलोभन है, इसमे न दार्शनिक, तात्विक बल॥
सैद्धान्तिक सबल प्रमाणो से, जाती है जड जिसकी खिसकी।
औदार्य भारती सस्कृति का, दर्शन में गणना की इसकी॥

महामारी का चित्रण कितना सजीव बन पडा है—

एक चिता पर, एक बीच में, एक पडा है धरती।
वर्ग-भेद के बिना शहर मे घूम रहा समवर्ती॥

छवो बालक आर्य आषाढभूति को वन्दन करने आते हैं, वहा के स्थिति-चित्रण मे तो मानो कवित्व अपने चरम उत्कर्ष पर पहुच गया है। पद्य-पद्य पर पाठक के मन मे एक अदभुत गुद्‌गुदी-सी होती है।

तप्त स्वर्ण-से उनके चेहरे, कोमल प्यारे-प्यारे।
झलक रही थी सहज सरलता, हसित वदन थे सारे॥

मानो श्रेष्ठ श्रेष्ठ सब पुद्गल, एकत्रित थे उनमे ।
जागृत जिन्हे देखकर होता, मोह न किसके मन में ॥

एक समान मजु श्राकृतिया, सुन्दर कपडे पहने ।
श्रल्प भार, बहुमूल्य वदन पर चमक रहे थे गहने ॥

दीप्तिमान कानो में कुण्डल, लोल कपोल-सपर्शी ।
मुक्ता, मणि, हीरो, पन्नो के हार हृदय श्राकर्षी ॥

रत्न-जटित कण्ठी कण्ठो में, कर ककरण मणि-मण्डित ।
हीरो की श्रक्षुद्र मुद्रिका, थी नवज्योति श्रखडित ॥

सुन्दर रूप, वसन भूषण से, द्विगुणित होकर निखरा ।
चार चाद उसमे चमकाता, उनका नखरा चखरा ॥

तुतली-तुतली प्यारी-प्यारी, मीठी-मीठी बोली ।
बडी सुहानी, हृदय-लुभानी, सूरत भोली-भोली ॥

लोम हर्ष उत्कठित होकर, एक-एक से श्रागे ।
देवकुमारो से छ बालक, श्राए भागे-भागे ॥

वर्तमान जीवन मे भी नास्तिकता कितनी श्रहितकर है श्रौर श्रास्तिकता कितनी हितकर यह श्राषाढभूति को स्वय भान होता है—

श्रास्तिकता ने तो ऊचा मुझे उठाया ।
श्राई नास्तिकता, ज्यो ही मुझे गिराया ॥
इससे बढकर क्या नरक ? हाय ! श्रकुलाऊ ।

पतनशील श्रौर उत्थान की स्थितियो का यथार्थ चित्रण श्राचार्यवर ने किया है—

श्राता पतन चरम सीमा पर तब चाहता उत्थान ।
प्राय मानव-मानस का यह सरल मनोविज्ञान ॥

है सम्भावित श्रत्युत्कर्षण में होना श्रपकर्ष ।
श्रत्यपकर्षण में ही होता निहित सदा उत्कर्ष ॥

श्राचार्यश्री तुलसी को श्रणुव्रत-श्रान्दोलन के द्वारा एक महान् नैतिक उद्बोधक के रूप मे कोटि-कोटि लोगो ने जाना है । महान् जैनाचार्य की भूमिका उनकी श्रपनी है ही । तेरापन्थ उन्हे नवम भाग्य विधाता के रूप मे पाकर कृतकृत्य ह । कवि श्रौर

ग्रन्थ-प्रणेता के रूप मे ससार ने उनको अब तक इतना नही जाना। ग्रन्थ-प्रणयन की दिशा मे भी उनकी प्रतिभा बहुमुखी है । जहा उन्होने श्रीजैनसिद्धान्तदीपिका, श्रीभिक्षुन्यायकर्णिका, प्रभृति तर्क और तत्त्व के विद्वज्जन भोग्य सस्कृत ग्रन्थ रचे हैं वहा कविजनो का सरस उपवन 'कालूयशोविलास' नामक महाकाव्य भी राजस्थानी भाषा मे रचा है । अग्नि-परीक्षा, भरतमुक्ति और आषाढभूति हिन्दी भाषा मे रचे गए प्रबन्ध काव्य हैं । आषाढभूति सम्वत २०१५ कानपुर चातुर्मास मे रचा गया है । आचार्यश्री आशु-कविता की शैली मे बोलते रहे हैं और मुनिश्री सागरमल जी 'श्रमण' इसे लेखबद्ध करते रहे है ।

व्याख्याता साधु-साध्वियो के लिए यह रचना सुगम हो सके और अधिकाधिक लोग इससे स्वत लाभान्वित हो सके, इस दृष्टि से प्रसग-प्रसग पर उल्लिखित कथाओ को सविस्तार हिन्दी गद्य मे लिख दिया है । जैन-परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण इस कृति मे पारिभाषिक शब्दो की बहुलता रही है, अत पारिभाषिक शब्दकोष भी कृति के साथ सलग्न कर दिया गया है । आशा है, आचार्यप्रवर की यह कृति बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय प्रमाणित होगी ।

स २०१७, आ० शु० द्वितीया
वृद्धिचन्द जैन स्मृति-भवन
नयाबाजार, दिल्ली

मुनि महेन्द्रकुमार

मंगलाचरण

दोहा

जय जय मगलमय अमल, अविचल अविकल शर्म ।
जय जग-जीवन आत्मधन, जय जय श्री जिनधर्म ॥१॥
अप्राणो का प्राण तू, अत्राणो का त्राण ।
शरणागत के सर्वदा, कोटि कोटि कल्याण ॥२॥
अतुल आत्म-बल विमल मति, महामहिम श्रद्धेय ।
निश्छल निर्मल अटल प्रण, नमो नमो दंपेय[1] ॥३॥

सोरठा

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चरण मुझे जिनसे मिले ।
(वे) श्रीकालूभगवान, स्मृति-पट पर अकित सदा ॥४॥

[2] हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ।
हम डट जाएगे, नही किचित् घबराएगे ।
समय पर कडे परीक्षण मे भी हम साहस दिखलाएगे ॥

जाति, समाज, देश, राष्ट्र का रखने को सम्मान ।
हुए शहीद अनेको, जिनका है इतिहास प्रमाण ।
तो क्यो हम सच्चे हित-साधन मे कायरता लाएगे ॥५॥

सीता को कैसे लोटाऊ खो अपना अभिमान ।
इसी अकड मे दशकधर ने किए प्राण बलिदान ।
तो क्या बडी बात है हम सत्पथ पर प्राण विछाएगे ॥६॥

---

१ आचार्य श्रीभिक्षु

२ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

प्रेम दीप मे बन परवाने कितने नर सर्वस्व ।
न्यौच्छावर कर देते हस-हस दिखलाते वर्चस्व ।
तो क्या नही साध्य पाने सब कुछ अर्पण कर पाएगे ॥७॥

धन की धुन मे मानव कितने, सहते कष्ट महान ।
बना रात दिन एक, छोडकर खान पान का ध्यान ।
तो क्या सद्गुण-धन पाने हम कष्टो से भय खाएगे ॥८॥

गीतक छन्द

जब स्वय का सत्य ही ध्रुव सत्य-पथ अविवाद है ।
जब स्वय की साधना मे प्राप्त आत्माह्लाद है ॥
जब स्वय के नेत्र ज्योति पुञ्ज विश्व निहारने ।
तो भला क्यो, किसलिए हम परमुखापेक्षी बने ॥९॥

भूल अपना स्वत्व बनते परमुखापेक्षी जभी ।
जान लो बस ये नही आगे बढेंगे अब कभी ॥
जहा विचलित हुई श्रद्धा, वहा निश्चित ही पतन ।
है अपेक्षा सर्वदा (हो) रत्नत्रयी मे लीन मन ॥१०॥

[१] आत्म-साधना महासौध की मूल भित्ति सम्यक्त्व रे ।
आके हम उसका जीवन मे क्या है सही महत्त्व रे ॥

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चरण ये तीन रत्न कहलाते ।
इनके सम्यग् आराधन से आराधक पद पाते ।
तीनो मे प्रमुख स्थान रखता है सम्यग् दर्शन सत्त्व रे ॥११॥

जाने जाते तत्त्व ज्ञान से, उन पर श्रद्धा दर्शन ।
इसके बिना न होता सम्यग् ज्ञान, चरण का स्पर्शन ।
श्रद्धा-सोपान-वीथि से पाए श्रावकपन साधुत्व रे ॥१२॥

---

१ लय—कोटि कोटि कण्ठो मे गाए

जिसके बिना महान ज्ञान, विज्ञान विनाशक होते।
नव आविष्कारो का सारा भार व्यर्थ ही ढोते।
है सदा अपेक्षित सब कार्यो मे आस्था का अपनत्व रे ॥१३॥

शका, काक्षा, विचिकित्सा पर-पाषण्डो की स्तवना।
और कुसगति उनकी करती अहित बडा ही अपना।
ये पाचो ही अतिचार हिला देते जिसका अस्तित्व रे ॥१४॥

"सद्धा परम दुल्लहा" यह प्रभु महावीर की वाणी।
पा "सम्मत्त रयण" रहते हैं जागरूक जो प्राणी।
वे पाते दिव्य ज्योतिमय अनुपम "तुलसी" अन्तर तत्त्व रे ॥१५॥

[1] श्रद्धा उपवन मे जब आता है भीषण तूफान।
किकर्तव्यविमूढ बना कैसे करता बेभान ?
इस पर आर्यप्रवर आषाढभूति-आख्यान सुनाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥१६॥

दोहा

आत्म-साधना मे सतत, जीवन ओतप्रोत।
महामहिम आचार्यवर, करते धर्मोद्योत ॥१७॥

उग्र विहारी साथ मे, शिष्य शतक सोल्लास।
आए उज्जयिनी पुरी, करने वर्षा-वास ॥१८॥

[2] आये आर्यप्रवर आषाढभूति आमोद मे रे।
पुर मे चहल पहल है जन मन परम प्रमोद मे रे ॥

---

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार
२ लय—मू दडी

अगणित गुण-रत्नो के आगर।
आर्हत - मत-मर्मज्ञ उजागर ॥
ज्योतिर्मय जग दिव्य दिवाकर।
प्रतिपल रहते व्यस्त, स्वस्थ अध्यात्म प्रबोध मे रे ॥१६॥

शिष्य एक से एक विचक्षण।
सावधान सयम मे प्रतिक्षण ॥
सम, शम, श्रम जिनके शुभ लक्षण।
विनयी, विज्ञ, विवेकी मुदित मना गुरु-गोद मे रे ॥२०॥

गुरु चरणो मे जीवन अर्पण।
जिनका है सर्वस्व समर्पण ॥
पाते गुरु करुणामय तर्पण।
है ना गर्गाचार्य-शिष्य से विनय विरोध मे रे ॥२१॥

समय समय शिक्षामृत पीते।
सचमुच सयम जीवन जीते ॥
गण-गण से अन्तर पट सीते।
धार्मिक शिक्षण वीक्षण चलता विमल विनोद मे रे ॥२२॥

जमघट रहता था जनता का।
कोई काम नही ममता का ॥
मिलता सदुपदेश समता का।
आते भविजन सुन-सुन सुगुरु वचन प्रतिवोध मे रे ॥२३॥

राधेश्याम

आध्यात्मिक मार्मिक धार्मिक उनके भाषण का अद्भुत ओज।
व्यक्ति-व्यक्ति करने लग जाते अपने अन्तर् मन की खोज ॥
जीवन दर्शन मुख्य विषय था जिनके पावन प्रवचन का।
पूंगी पर ज्यो नाग डोलने, लगता था मन जन-जन का ॥२४॥

[१] व्यापक रूप प्रचार धर्म का होने लगा महान।
किया गणाधिप ने जब सबको बिना भेद आह्वान।
यो आषाढभूतिवत् सार्वजनिक उपदेश सभाएगे ॥२५॥

राजा, रक, धनिक, निर्धन, नेता, मजदूर, किसान।
जाति-पाँति का भेद भुला सब सुनते एक समान।
ऐसे महामान्य प्रवचन की महिमा हम महकाएगे ॥२६॥

[२] ऐ मानव ! मानव जीवन का तूने क्या लाभ कमाया है ?
अनमोल समय खो बार बार किस किसने वापिस पाया है ?

जकडा यौवन धन बन्धन मे।
अकडा अभिमान निबन्धन मे॥
भौतिक धुन मे नास्तिक पन मे भीषण घमसान मचाया है ॥२७॥

स्वार्थी बनकर अन्याय किया।
औरो का सब कुछ छीन लिया॥
"बन कर्जदार भी घी पीना", क्यो यह सिद्धान्त बनाया है ? २८॥

है पुर्नजन्म किसने देखा ?
कहाँ पिछले पापो का लेखा ?
यह घोर अधर्म नराधम रे ! कह क्यो तूने पनपाया है ?२९॥

क्या है जन्मान्तर का प्रमाण ?
कहाँ रौरव है ? कहाँ देवयान ?
यह प्रश्न प्रदेशी राजा का, केशी गुरु ने सुलझाया है ॥३०॥

इस जीवन मे भी धर्म बिना।
किसने ली सुख की साँस गिना॥
पापी का हृदय अन्त मे तो मन ही-मन रोना पाया है ॥३१॥

---

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

२ लय—ए मानव मानव

रहा पार्श्वमणि छ महीने घर ।
सोना न बनाया रत्ती भर ॥
हतभागो वह उद्योगहीन, तो तू भी क्या कम माया है ॥३२॥

मन बना मोह मे मतवाला ।
पीली अकडाई की हाला ॥
तू एक दिवस का अरे भूप ! आखिर तो माल पराया है ॥३३॥

[1] क्या है सत्यासत्य विवेचन मिला सभी को ज्ञान ।
क्या है कृत्याकृत्य अभी तक हुआ न इसका भान ॥
अब हम कार्याकार्य विवेक एक पल मे दिखलाएगे ।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥३४॥

[2] मानव बोलो मानवता के पथ पर कहा तक चलते हो ।
मानवीय आदर्शो की छाया मे कहा तक पलते हो ॥

है आदर्श तुम्हारा रखना सदा सभी से एकता ।
किन्तु कहा पर आज तुम्हारी चली गई है नेकता ।
बढती देख दूसरो की क्यो मन ही मन मे जलते हो ॥३५॥

अपनी शुद्ध नीति फलदायी यह सच्चा सिद्धान्त है ।
उसे भूलकर चित्त तुम्हारा बना आज उद्भ्रान्त है ।
कोडी कोडी को पाने हा ! कितनो को तुम छलते हो ॥३६॥

सदा तुम्हारा रहा सहज गुण भक्ष्याभक्ष्य विवेक जो ।
किन्तु आज वह कहा खो गया दृष्टि उठाकर देख लो ?
आमिष खा, मदिरा पीकर तुम, क्यो यो आग उगलते हो ॥३७॥

अहित न करना औरो का, यह रही सनातन भावना ।
उसे भूल करके पर-वञ्चन, ध्येय तुम्हारा क्यो बना ?
बिना डकार लिए औरो के, क्यो अधिकार निगलते हो ? ३८॥

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार
२ लय—बाजरे री रोटी पोई

क्या थे और हो गए क्या तुम, अब आगे क्या होना है ?
'तुलसी' सत्य, शील, सयम से जीवन को सजोना है।
सोचो 'अणुव्रत' के साचे मे, अब भी क्यो ना ढलते हो ?३६॥

सहनाणी

कृतकृत्य हो रही है जनता यह कैसा सुन्दर योग स्वय।
आचार्यप्रवर का शुभागमन है धन्य आज कृतपुन्य वय।
पीते है सब चातक बनकर सत्शिक्षामय घन-रसधारा।
है उतर रहा जन जन-मन से अज्ञान अश्रद्धा का पारा ॥४०॥

महाव्रत, अणुव्रत मय युगल धर्म श्रीक्षमाश्रमण बतलाते है।
उन ओज भरे व्याख्यानो से नैतिक नव जागृति लाते हैं।
आत्मा का क्या वास्तविक रूप वे भिन्न भिन्न समझाते हैं।
नास्तिकता और अनास्था की, मानो धज्जिया उड़ाते हैं ॥४१॥

यदि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पृथगस्तित्व नही ?
चेतनता धर्म, कहो किसका, गुण अननुरूप होता न कही ?
चेतना शून्य क्यो मृत शरीर ? धर्मी से धर्म भिन्न कैसे ?
यह जीव स्वतन्त्र द्रव्य इसकी सत्ता है स्वय सिद्ध ऐसे ॥४२॥

है पुन्य पाप का द्योतक यह वैषम्य विश्व का स्पष्ट स्पष्ट।
प्रत्यक्ष प्रमाणित कर्मवाद, करते ससृति के सौख्य, कष्ट ॥
है नही जीव का जन्मान्तर, यह निर्णय प्रश्रय पाएगा।
कृतनाश अकृत का भोग, दोष तो पग पग पर आ जाएगा ॥४३॥

चार्वाक नही चिन्तन देता, साप्रतिक सुखो का यह केवल।
आश्वासन मात्र प्रलोभन है इसमे न दार्शनिक, तात्त्विक वल ॥
सैद्धान्तिक सबल प्रमाणो से, जाती है जड़ जिसकी खिसकी।
औदार्य भारती संस्कृति का, दर्शन मे गणना की इसकी ॥४४॥

[१] पडा अचूक प्रभाव सभी पर सुनकर यह उपदेश।
आस्तिकता छाई है छूटा नास्तिकता का क्लेश ॥
ऐसे सरल साधनो से हम नास्तिकता छुडवाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥४५॥

[२] जन-जन-मन मे आस्तिकता की आस्था सबल जमाई।
अपने मन मे लगी उखडने कैसी बेला आई जी ॥
आषाढभूति का धार्मिक कार्यक्रम अब अवरुद्ध है।
कर सके कौन क्या ? जब हो जाती यो प्रकृति क्रुद्ध है ॥४६॥

हुआ प्रकोप महामारी का अकस्मात उस पुर मे।
मानो चली प्रचण्ड वेग से प्रलय पवन घर घर मे जी ॥
आषाढभूति का धार्मिक कार्यक्रम अब अवरुद्ध है ॥४७॥

प्राय पडे बीमार न कोई, सेवा करने वाला।
त्राहि त्राहि कर रहे, न घर मे पानी भरने वाला जी ॥४८॥

अच्छे अच्छे भिषगवरो की औषधि काम न करती।
उग्र व्याधि के प्रबल घात से धडक रही है धरती जी ॥४९॥

छोड पितामह प्रपितामह को पौत्र प्रपौत्र सिधारे।
माता मरी रो रहे बच्चे विलख-विलख कर सारे जी ॥५०॥

अन्ध-यष्टि से निराधार, आधार नन्द इकलौते।
पैर पसारे, कौन उबारे, रहे स्वजन सब रोते जी ॥५१॥

कही कही पर तो मृतको को नही जलाने वाले।
घर-घर मे शव पडे सड रहे, कौन किसे सभाले जी ॥५२॥

---

१. लय—म्हारा सतगुरु करत विहार
२ लय—म्हारी रससेलडिया

एक चिता पर, एक बीच मे, एक पडा है धरती ।
वर्ग-भेद के बिना शहर मे घूम रहा समवर्ती जी ॥५३॥

आर्यप्रवर आषाढभूति के द्वारोपरि अब आया ।
योग्य योग्य शिष्यो को जिसने स्वर्गधाम पहुचाया जी ॥५४॥

बड़े बडे सिद्धान्त विशारद, शारद शशधर शान्त ।
शान्त हुए है शिष्य, गणाधिप सोच रहे उद्भ्रान्त जी ॥५५॥

[1] वह वीर है रणधीर जो अवसर पर धैर्य दिखाए ।
आचार्यवर आषाढ से गभीर हृदय अकुलाए ॥
यह क्या अम्बर टूट पडा, या धरती उलटी जा रही ?
प्रलय काल की चली पवन, क्या इन्द्रजाल छवि छा रही
कैसे मन को समझाए ॥५६॥

जिसका जन्म मृत्यु भी उसकी, यह तो हमने जाना था ।
उलट पुलट कर खेल खिलेंगे, यह किसने पहचाना था ।
'क्यो मार ओलिया खाए' ॥५७॥

कितने श्रम से घडा बने, यह कुभकार ही जानता ।
घायल की पीडा को कोई, घायल ही पहचानता ॥
किसको क्या अब बतलाए ॥५८॥

कितना खपना पडता कृषि मे पूछो अरे ! किसान से ।
आठो याम सुरक्षा उसकी करनी पडती ध्यान से ॥
क्षति कही नही हो जाए ॥५९॥

फूट पडा यो घडा अचानक, व्रण पर हुआ प्रहार जो ।
पकने वाली खेती पर हा ! भीषण गिरा तुषार यो ॥
हार्दिक दु ख किसे सुनाए ॥६०॥

---

१. लय—निजाम हैदराबाद के

योग्य, योग्यतम शिष्यो का आकस्मिक स्वर्ग प्रयाण जो ।
कडी चोट पहुँचाता मानो सिर पर पडी कृपाण हो ॥
नयनो से नीर बहाए ॥६१॥

आजीवन जो धर्म किया, क्या उसका यह प्रतिफल भोगा ?
पापी हो सानन्द अरे ! क्या नास्तिकवाद सही होगा ?
इस उलझन मे उलझाए ॥६२॥

दोहा

कल तक जो थे झूलते, सत्शिक्षामय झील ।
आज बने वे आर्यवर ! देखो शकाशील ॥६३॥

[1] शकाशील बने क्यो मानव, क्या शका का काम ?
कर ककरण क्या करे आरसी, धर्म शान्ति का धाम ॥
अविचल शान्ति-पिपासु हम मधुर स्वर ऐसे गाएगे ।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥६४॥

[2] धर्म है शान्ति धाम ।
क्या है सशय का काम ।
जग जीवन का विश्राम ॥

क्यो है ? क्या है ? यो कह देते,
जडता का वे परिचय देते ।
क्यो न स्वय ही उत्तर लेते ?
अपने मन को थाम ॥६५॥

सहज अहिसा सच्ची वाणी,
झूठ कपट है खीचातानी ।
जो विकार की है सहनाणी,
परखे हम प्रतियाम ॥६६॥

---

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

२ लय—धर्म की जय हो जय

जाप भजन से मानस खिलता,
अनुपम आध्यात्मिकसुख मिलता।
मुह से सहसा तभी निकलता,
निर्धन के धन राम ॥६७॥

घिर जाते विपदाओ से जब।
जाते भूल स्वकृत दुष्कृत सब ॥
मढते दोष धर्म पर वे तब।
होते जो उद्दाम ॥६८॥

जातिवाद मे इसको डाला।
स्वार्थो की छाया मे पाला।
अमृत कहलाया विष, हाला।
निकला दुष्परिणाम ॥६९॥

विना धर्म के दैनिक जीवन-
चर्या कभी न बनती पावन।
'तुलसी' स्वय शुद्धि का साधन,
विकसित गुण आराम ॥७०॥

[1] अब बचे हुए शिष्यो को अपने आसन्न बुलाते।
वात्सल्य भरे शब्दो मे अन्तर् मन व्यथा सुनाते ॥
डब डब है दोनो आखे, अवरुद्ध कण्ठ गुरुवर के।
बोले है गद्‌गद् स्वर से, सबको सम्बोधित करके ॥७१॥

[2] सुनो सुनो सुखदाई सन्तो! मेरे मन की बात।
श्रद्धा डोल उठी सद्‌गुरु की, यह कैसा आघात ?

---

१ लय—इठलाना
२ लय—उडी हवा मे जाती चिडिया

फलित ललित आषाढभूति गण ।
पतझड आज हुआ देखो ।
किसने सोचा यो आएगा भीषण झझावात ॥७२॥

शेष रहे भी बच पाएगे ।
यह भी सम्भव नही अहो !
रह रह आशा तोड रही है, कुपित काल की घात ॥७३॥

ले लो सभी विदा मेरे से ।
मै सानन्द तुम्हे देता ।
पर घिरने वाली है, इन आँखो मे काली रात ॥७४॥

मेरे प्रति यदि स्नेह तुम्हारा ।
(तो) पुन स्वर्ग से तुम आना ।
मुझे दिखाना दिव्य दृश्य जो, अनुभव हो साक्षात ॥७५॥

कहो कहू क्या और अधिक मै ?
देखो ! विस्मृति मत करना ।
शिष्यो डगमग डगमगाती यह नाव तुम्हारे हाथ ॥७६॥

दोहा

बचे हुए सब शिष्य भी गए काल की गोद ।
शेष रहे आचार्यवर, (और) बालक सन्त विनोद ॥७७॥

[1] अब होगा कौन सहारा ?
आषाढभूति का उजड गया घर सारा ॥अब०॥
धुन रहे आर्यवर शीश ।
हृदय की टीस, न सुनने वारा ॥अब०॥

---

१ लय—है सद्गुरु एक सहारा

हा कैसी विषम परिस्थिति है।
कुछ काम नही देती मति है।
सब शिष्यों की वाट देखते हारा ॥७८॥

था कितना उनको समझाया।
पर नही एक भी है आया।
किस ब्रह्मखाड मे गिर सम्बन्ध विसारा ॥७९॥

सयम की, सफल साधना की।
तप मे भी कमी नही रक्खी॥
परिषह भी सहे गए सब उनके द्वारा ॥८०॥

इसका फल देवलोक पाते।
सुर होकर वे निश्चित आते।
यह कल्पित इन्द्रजाल सा सभी नजारा ॥८१॥

नास्तिक मत होगा स्पष्ट सही।
आस्तिकता मे कुछ सार नही।
फिर क्यो निष्कारण वहे, धर्म असिधारा ॥८२॥

राधेश्याम

हो विखिन्न आषाढभूति यो बार बार करते अनुताप।
कल्पित वार्तालाप रचाते मन ही मन यो अपने आप॥
अश्रुत वाक्य सुने गुरुवर के पहुँची मन मे गहरी ठेस।
वोला शिष्य विनोद विनय से यो क्या कहते है सघेश ? ८३॥

[1] आप से वढकर गुरुजी ! कौन ज्ञानी आज है ?
धर्म शासन के गणाधिप ! आप ही अधिराज है॥

आपकी आचार्यवर ! सर्वत्र महिमा छा रही।
सुप्त धार्मिक-लोक मे नव चेतना-सी आ रही।
गौरवान्वित आपसे गुरुदेव ! धर्म समाज है ॥८४॥

---

१ लय—दिल से गामन मे रमे

देव ! आस्तिकवाद की जन-जन के मन पर छाप है ।
नास्तिको की तर्क तो मानो अरण्य-प्रलाप है ।
आपके ही हाथ मे अब धार्मिको की लाज है ॥८५॥

गीतक छन्द

पर सुने हम आपके मुह से अनोखी बात जब ।
सत्य नास्तिकवाद है, होता कडा आघात तब ॥
दिव्य रवि क्यो कर रहा, अधेर छोड प्रकाश को ।
शुक्ल शशधर तुल्य श्रद्धा जा रही क्यो ह्रास को ?८६॥

क्यो सुमेरू हुआ कम्पित, अब्धि उल्टा जा रहा ?
सघन जो घन-उदधि कैसे है तरलता पा रहा ?
नेत्र की कीकी प्रभो ! आलोक देती क्यो नही ?
परमुखापेक्षी मृगाधिप क्या कहो होता कही ?८७॥

भूल जाए क्या अभी उस सरसतम उपदेश को ?
जो दिया गुरुदेव ने मानव बनाने देश को ॥
शिष्य सारे चल बसे यह क्या व्यथा की बात है ?
प्रभो ! मरना और जीना क्या किसी के हाथ है ?८८॥

धर्म होगा सत्य, जब आ स्वर्ग से कोई कहे ।
व्यर्थ बौद्धिक द्वन्द्व मे क्यो आप विचलित हो रहे ?
क्या अधिक मै कहू गुरुवर ! स्वय सब कुछ जानते ।
नम्र अनुनय विभो ! आस्था को प्रमुखतम स्थान दें ॥८९॥

दोहा

रोगाकुल व्याकुल हृदय, सविनय शिष्य विनोद ।
चलित चित्त आचार्य को, देता है प्रतिबोध ॥९०॥

भग्न-हृदय द्रविताक्षि युग, शिष्य शीश धर हाथ ।
स्खलित वचन बोले सुगुरु, रुद्ध कण्ठ अनुदात ॥९१॥

[1] चेले ! क्या उपदेश सुनाने लगा ?
भोले ! बालक ज्यो ललचाने लगा ।।

आस्तिको के तत्त्व को अपनत्व से मै जानता ।
नास्तिको की तर्क को सवितर्क मै पहचानता ।।
बच्चे ! क्या यह पाठ पढाने लगा ।।९२।।

आत्म ओ परमात्म, धर्माधर्म की करते कथा ।
बीत चूकी वय समूची क्या कहू मन की व्यथा ।।
ऐसी घटना से जी घबराने लगा ।।९३।।

तत्त्व केवल जानने से काम क्या अपना सरा ।
भोज्य को पहचानने से पेट बोलो कब भरा ।।
मन कष्टो से अब उकताने लगा ।।९४।।

व्यथा कोई एक है क्या ? व्यथा से जीवन सना ।
हो रहा शत-खण्ड मानस जर्जरित यह तन बना ।।
सब भान्ति बुढापा सताने लगा ।।९५।।

हट रही आस्था हृदय से धर्म-शास्त्रो के प्रति ।
जागते सोते दिवगत शिष्य सारे सप्रति ।।
खेला सबने ही हा ! यह कैसा दगा ।।९६।।

रे ! विनीत विनोद ! रोगग्रस्त तू अस्वस्थ है ।
क्षीण पुद्गल पड रहे मेरा हृदय सत्रस्त है ।।
कही जाऊ तेरे से भी मै न टगा ।।९७।।

[2] सौ सौ सोगन्ध विनोद ! तुझे सुर होकर मुझे जगाना है ।
जैसे भी हो आ एकबार, यह मेरी बात निभाना है ।।

---

१ लय—काना वशी की टेर

२ लय—घनश्याम तुम्हारे द्वारे पर

सच्ची शास्त्रो की वाणी है, अब तक जो मैने मानी है ।
तो सद्गुरु के उपकारो से, सच्ची उऋणता पाना है ।।९८।।

तोते ज्यो तुझे पढाया है, हाथो से लेख सिखाया है ।
मैने भावी आशा का शुभ, आधार तुझे ही माना है ।।९९।।

डगमग करती यह नैया है, पतवार न कोई खवैया है ।
मझधार रहे या पार लगे, तेरे ही हाथ तराना है ।।१००।।

सोरठा

बोला शिष्य विनोद, अश्रु भरे दोनो नयन ।
अपने मन को रोध, नम्रानन मुकुलित बदन ।।१०१।।

[1] करता हू सकल्प स्वर्ग से निश्चित आऊगा ।
कुछ भी हो पर मैं अपना कर्तव्य निभाऊगा ।।

मरने का गुरुदेव ! हृदय मे मेरे किंचित सोच नही ।
आप अकेले रह जाएगे रह रह चिन्ता एक यही ।
उस एकाकीपन का कारण मै बन जाऊगा ।।१०२।।

है अनन्त उपकार सुगुरु का क्षण भर मैं भूलू नही ।
हो सुपर्व उन स्वर्ग सुखो मे गुरुवर ! मै भूलू नही ।
सबसे पहले आ चरणो मे शीश झुकाऊगा ।।१०३।।

स्वर्ग-प्रवासी सभी शिष्य, अब कौन करेगा परिचर्या ।
एकाकीपन मे है कितनी कठिन निभानी मुनिचर्या ।
हार्दिक दुःख मुझे है कैसे उसे मिटाऊंगा ।।१०४।।

उसमे भी आचार्यप्रवर है यो विचलित सम्यक्त्व से ।
कही नही सतुलन गमा, हो आवृत मिथ्यातत्त्व से ।
जन्मान्तर का दे प्रमाण (मै) सुस्थिर कर पाऊगा ।।१०५।।

---

१ लय—अणुव्रत है सोया ससार

पर कृपया अविचल मन, अन्तिम करवाए आराधना।
कर अनशन गुरु पादाम्बुज मे सफल करू मै साधना।
साधक मै, आराधक बन नव ज्योति जगाऊगा ॥१०६॥

राधेश्याम

मैं हू सच्चा भक्त और गुरुवर की सच्ची कृपा रही।
नि सन्देह पूज्यवर ! मेरा होगा यह सकल्प सही ॥
होगे श्रीआचार्यदेव ही, लाखो पतितो के पावक।
होगा यही विनोद पूज्य-पादाम्बुज का नन्हा सावक ॥१०७॥

दोहा

सुन बाते विश्वस्त ये, हुआ हृदय कुछ स्वस्थ।
करवाते आराधना, होकर के आत्मस्थ ॥१०८॥

[1] शिष्य ! ससार खेयन्ने ! सफल हो साधना तेरी।
इगियागार सम्पन्ने ! सफल हो साधना तेरी ॥

जीव त्रस और स्थावर की, जान अनजान जो हिंसा।
तो मिथ्या दुष्कृत पल पल, सफल हो साधना तेरी ॥१०९॥

मृषा भापण अदत्तादान से, रहता परे तू था (सदा)।
हुई हो भूल, वह निष्फल, सफल हो साधना तेरी ॥११०॥

तुम्हारी ब्रह्म की ज्योति, चुनौती थी युवानो को।
हताहत काम की हलचल, सफल हो साधना तेरी ॥१११॥

दृष्टि सयम, मन सयम, खाद्य सयम मे आकस्मिक।
हुई स्खलना, वह असफल, सफल हो साधना तेरी ॥११२॥

धर्म उपकरण भी क्या ? अग पर भी क्यो रहे ममता।
साथ समता का ले सम्बल, सफल हो साधना तेरी ॥११३॥

१ लय—मेरा दिल तोडने

कषायो की कुटिलता से, हृदय कालुष्यमय बनता।
रहे अकषाय से उज्ज्वल, सफल हो साधना तेरी ॥११४॥

नही शंका, नही काक्षा, न विचिकत्सा सताये जो।
जैन दर्शन मिला अविकल, सफल हो साधना तेरी ॥११५॥

कटूक्ति जो किसी से भी, हुई आवेश मे आकर।
क्षमत-क्षामन हृदय प्राजल, सफल हो साधना तेरी ॥११६॥

दोहा

होती देखी देह की, सकल शक्तियॉ क्षीण।
करवाया धर आत्मबल, अनशन सर्वागीण ॥११७॥

वर सम्यग् आलोचना, करवाते धृतिधार।
बार-बार मगल शरण, बार-बार नवकार ॥११८॥

भावो की श्रेणी चढी, बढे विमल परिणाम।
धन्य स्वय को मानता, सिद्ध हो रहे काम ॥११९॥

बद्धाजलि गुरुवर वचन, सुनता विनय सचेत।
करता अमलाराधना, पूर्ण समाधि समेत ॥१२०॥

[1] न चिन्ता हो चतुर चेले! अकेला जो रहूगा मै।
रहे परिणाम ज्यो प्रोज्ज्वल, सफल हो साधना तेरी ॥१२१॥

शुश्रूषा और वैयावृत्ति की उसको न भूलू मै।
रहा तू सर्वदा निश्छल, सफल हो साधना तेरी ॥१२२॥

मिला यह आत्मधन सयम, मिला सौभाग्य से शासन।
सदा, 'तुलसी' कुशल मगल, सफल हो साधना तेरी ॥१२३॥

---

१ लय—मेरा दिल तोडने

दोहा

अब अचेत होने लगा, देख धमनि स्वकरेण ।
मुख सन्मुख कर कर्ण के, बोले बाढ स्वरेण ॥१२४॥

अर्हत् सिद्धाचार्यवर, उपाध्याय अणगार ।
परमेष्ठी पचक चरण, वन्दन बारम्बार ॥१२५॥

मगल लोकोत्तम स्मरण, विमल शरण है चार ।
शिष्य साधना यह सफल, हो इनके आधार ॥१२६॥

[1] लो प्यारे शिष्य ! विदाई, जब जाना ही अहो ।
आऊगा पुन स्वर्ग से, जाते जाते कहो ॥

दो-चार पलक भी ठहरो, क्या इतनी शीघ्रता ।
कब किधर मिलोगे हमसे, यह तो आश्वासन दो ॥१२७॥

पाषाण-हृदय होकर यो, क्यो नाता तोडते ।
चित्त चूर-चूर होता है, इतने क्यो निर्दय हो ॥१२८॥

अपलक आँखों से पल-पल, हम पथ निहारेगे ।
देखेगे अपने प्रण पर, तुम कितने निश्चल हो ॥१२९॥

भाई ? हम भटक न जाए, केवल विश्वास मे ।
लाखो को लाज तुम्हे है, यह नैया गर्क न हो ॥१३०॥

दुर्जन सज्जन दोनो ही, यो सदा सताते है ।
वे मिलते और बिछुडते, क्या अन्तर रहा अहो ॥१३१॥

अरिहन्त, सिद्ध, सयम-धर मुनि, धर्म शरण तुमको ।
अन्तिम श्वासो तक विनयी ! इनका विस्मरण न हो ॥१३२॥

---

१ लय—लो जैन जगत के तीर्थंकर

[1] शरण चत्तारि ।

पग - पग मगलकारी ॥
सकल विघ्न भयहारी ॥

देव-देव अर्हन् तीर्थंकर,
सिद्ध आत्म-सुख-लीन निरतर ।
साधु साधना मे है तत्पर,
धर्म सदा सुखकारी ॥१३३॥

अर्हन्, धर्म सृष्टि अधिनायक,
सकल सघ के भाग्य-विधायक ।
विघ्न-विनायक, मगल-दायक,
अनन्त चतुष्टयधारी ॥१३४॥

सिद्ध स्वरूप अरूपी अक्षय,
अज, अजरामर अविचल अव्यय ।
केवल युगल शान्तिमय चिन्मय,
अननुमेय अविकारी ॥१३५॥

साधु सहज समता मे रहते,
निर्भय सयम-पथ पर बहते ।
अनु-प्रतिकूल परीषह सहते,
अप्रतिबद्ध विहारी ॥१३६॥

धर्म आत्म उन्नति का साधन,
सयम तप से शिव आराधन ।
बनता जिससे जीवन पावन,
सुख-दुख मे सहचारी ॥१३७॥

लोकोत्तम ये चारो मगल,
इनसे दब जाते सब दगल ।
मिलता अतुल आत्म-बल सबल,
'तुलसी' जय-जयकारी ॥१३८॥

---

१ लय—धर्म की जय हो जय ।

२

[1] एकाकी बैठे अब गुरुवर करते विविध विचार।
रह रह उठते मानसाब्धि मे सकल्पो के ज्वार॥
द्रवित हृदय से उनके मन की स्थितिया आज सुनाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे॥१॥

[2] क्या करू ? कहा अब जाऊं रे ! दुख किसे सुनाऊ रे !

देखा था मैने जीवन मे, जिसका कभी न सपना।
रहा नही कोई भी सम्मुख, जिसे कहू मैं अपना॥
मन को कैसे समझाऊ रे ! दुख किसे सुनाऊ रे॥२॥

एक रहा था जो छोटा-सा, बालक नयन सितारा।
अन्ध-यष्टि-सा मेरे आगे-पीछे एक सहारा॥
कैसे विस्मृति कर पाऊ रे॥३॥

निर्बल का बल, निर्धन का धन, यदि वह भी बच जाता।
तो उसके आधार बुढापा, सुखपूर्वक कट जाता॥
अब रो-रो नयन गमाऊ रे॥४॥

मै एकाकी, वृद्धावस्था, शिष्यो का दुख भारी।
मुझे मारती है क्षण-क्षण मे, चिन्ता की महामारी।
अब कैसे समय बिताऊ रे॥५॥

क्या ही अच्छा होता मै भी, कालग्रसित हो जाता ?
इन आखो से प्रलय-काल की रात्रि देख नही पाता॥
क्यो अब भी ना मर जाऊ रे॥६॥

---

१. लय—म्हारा सतगुरु करत विहार
२ लय—मत बनो शरावी रे

शिष्यों के उपकरण पडे हैं, ये भी खाने आते।
स्मृति मे आ सस्मरण हृदय के है टुकडे कर जाते ॥
टूटा मन किसे दिखाऊ रे ॥७॥

मेरी सारी आशाओ पर, हाय ! फिर गया पानी।
सयम का यह प्रतिफल होगा मैने कभी न जानी ॥
जीवन किस भॉति टिकाऊ रे ॥८॥

दोहा

हुए आर्य विक्षिप्त से, बीती सारी रात।
वही जान सकता, लगे जिसके मन आघात ॥६॥

[1] परिवृत रहते मुनियो से वे बेठे है एकाकी।
कोई न पूछने वाला है कैसी द्रावक झाकी ॥

करते ही इगित आते थे सम्मुख शिष्य अनेको।
आई है उन पर कैसी यह विषम परिस्थिति देखो ॥
होगी यह दशा अन्त मे क्या कभी किसी ने जानी ?
यो नूतन नृत्य दिखाती कर्मो की अलख कहानी ॥१०॥

टूटा धीरज का धागा, कोई न साधने वाला।
फूटा है बान्ध हृदय का, कोई न बाधने वाला।
उठ उठ कर दौड रहे है, आ कौन उन्हे अब रोके।
उठते मानस अम्बुधि मे हा ! प्रलय पवन के झोके।
हार्दिक दु ख बाहिर आता नयनो से बनकर पानी।
यो नव नव नाच नचाती कर्मो की अलख कहानी ॥११॥

हा ! वत्स विनोद ! कहा तू मेरी आशा के तारे।
करुणार्त पुकार रहे है, आ वत्स ! शीघ्र तू आ रे ॥
आहट सुन दौडे-दौडे, वे द्वारोपरि जाते है।

१ लय—इठलाना सब ही छोडो

कोई न दृष्टिगत होता (तो) मूर्छित से हो जाते है ॥
पथ भूल रहे है अपना आषाढभूति गुरु ज्ञानी ।
कैसे उत्पथ ले जाती, कर्मों की अलख कहानी ॥१२॥

कर्मों से हो जाते है, ऐसे ज्ञानी अज्ञानी ।
जो धर्म, शुक्ल के ध्याता, बन जाते आर्त-ध्यानी ।
लाखो के तारक बनते अपने हित मे व्यवधानी ।
है शिथिल, ग्रथिल वन जाते ऐसे उन्नत अवधानी ॥
मन भटक रहा है उनका जो आगम अनुमधानी ।
पावन को पतित वनाती कर्मों की अलख कहानी ॥१३॥

राधेश्याम

शास्त्रो मे तो जहा स्वर्ग का सुन्दर वर्णन आता है ।
होते ही उत्पन्न मुहूर्तान्तर मे सुर बढ जाता है ॥
कितनी राते बीती अब तक आया पुनः विनोद नही ।
इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, स्वर्ग नरक कुछ नही कही ॥१४॥

[1] लगता इस साधुपन मे कुछ भी सार है नही ।
यो उद्धार है नही, नैया पार है नही ॥

कल्पित हैं सारे आगम,
सयम का व्यर्थ परिश्रम ।
कोई भी फल इसमे साकार है नही ॥१५॥

कहा वे नरको के दु ख है,
कहा वे स्वर्गो के सुख हैं ।
जो कुछ है यही और ससार है नही ॥१६॥

---

१ लय—यह है जगने की वेला

ये सब है व्यर्थ प्रलोभन,
तन से अतिरिक्त न चेतन ।
आत्मा का जब कोई आकार है नही ॥१७॥

पुण्यो पापो की गप्पे,
आश्रव सवर के टप्पे ।
कर्मो का जब प्रत्यक्षाधार है नही ॥१८॥

लोकस्थिति सारी कल्पित,
क्या है यह षट् द्रव्याश्रित ।
कोई भी आस्था का आसार है नही ॥१९॥

झूठी धर्माधर्मास्ति,
क्या पुद्गल आकाशास्ति ?
इस उलझन का कोई भी प्रतिकार है नही ॥२०॥

तप, जप के सारे फन्दे,
सचमुच है गोरख-धन्धे ।
फस जाने पर कोई उपचार है नही ॥२१॥

जो भी हैं यहा से जाते,
आकृति कोई न दिखाते ।
इससे है सिद्ध पुनरऽवतार है नही ॥२२॥

गीतक छन्द

स्वर्ग होता यदि सुनिश्चत शिष्य आता क्यो नही ?
दे गया जो वचन उसको, वह निभाता क्यो नही ?
स्पष्ट यह निष्कर्ष निकला, और कुछ है ही नही ।
साम्प्रतिक जो दृष्टिगत हो वही केवल है सही ॥२३॥

[1] देखो हीरा सा जनम गमाया, सयम के इस जजाल मे।
इससे कुछ भी न लाभ कमाया, फस साधुपन के जाल मे॥

भूला भ्रम मे देखा देखी, पहन लिया यह बाना।
परम शान्ति का सीधा साधन, इतने दिन इसको ही था माना॥
तो बन बैठा कगाल मै ॥२४॥

मुझे क्या पता यह सारी ही, थी ढकोसला बाजी।
अरस विरस खा अग सुखाया, ठडे टुकडे वह सूखी भाजी॥
ही थी क्या मेरे भाल मे ॥२५॥

चलते चलते पैर घिस गए, कन्धे भार उठाते।
सारे केश उड गए देखो, हाथो से लोच कराते॥
हू कैसा हाल विहाल मै ॥२६॥

दर दर का मै बना भिखारी, खाख घरो की छानी।
थोडी सी भी बूदे आई, हा हा ! मिली ना रोटी पाणी।
रूढि की चाल कुचाल मे ॥२७॥

असन, वसन, उपकरण स्थान भी, कभी न पूरे पाए।
'देहे दुक्ख महाफल' ये, शास्त्रो मे सूक्त सभाए॥
जड फस जाता जजाल मे ॥२८॥

मिली न शुद्ध वायु गर्मी मे, शर्दी मे ठिठुराया।
क्षुद्र जतुओ ने वर्षा मे, चूट चूट कर खाया॥
सुख पाया मै न त्रिकाल मे ॥२९॥

नृत्य, वाद्य, सगीतो का रस, मे न कभी ले पाया।
इन्द्रिय-निग्रह मन-सयम की, उलझन मे उलझाया॥
फुसलाया आल-पपाल मे ॥३०॥

---

१ लय—भजन विना वाव रे

[1] जिन्दगी है मोज मे, अब मोज मे बिताऊगा ।
भूल चूक इस बन्धन मे, कभी नही फिर आऊगा ।।
नव ससार वसाऊंगा ।।

धन ही है जीवन का सार, धन से ही चलता ससार ।
यहा से जाकर सबसे पहले, धन के ढेर लगाऊगा ।।
मै कुबेर बन जाऊगा ।।३१।।

सीधा सट्टे का व्यापार, मुट्ठी मे होगा बाजार ।
रम्याकार नए फैशन की कोठी बनवाऊगा ।।
सुन्दर बाग लगाऊगा ।।३२।।

होगे सब सुख-साधन पास, नृत्य, वाद्य, सगीत विलास ।
उच्च कोटि का सुसमृद्ध मैं, गाथापति कहलाऊगा ।
परमानन्द मनाऊगा ।।३३।।

राधेश्याम

पग-पग पर सकट झेले है जब से पहना यह बाना ।
अब इससे ही मुझे चाहिए लाभ उठाना मनमाना ।।
यही वेश ऐसा है जिस पर श्रद्धानत सारा ससार ।
इसी वेश के द्वारा सारी हो सकती आशा साकार ।।३४।।

गुण को कोई नही पूछता, आज पूछ है बाने की ।
आवश्यकता है जनता पर अपनी छाप जमाने की ।।
लाखो के हृदय-स्थल मे मेरे प्रति पूरी निष्ठा है ।
सभी मान करके परमेश्वर रखते पूर्ण प्रतिष्ठा है ।।३५।।

मीनो को आकर्षित करने काटा है यह आमिष लिप्त ।
और लुभाने भोले शलभो को यह दीप-शिखा है दिप्त ।।
अज्ञानी हरिणो का जीवन हरने यह साधन सगीत ।
फुसलाने जग की जड जनता को, यह मुनि का वेश पुनीत ।।३६।।

---

१. लय—जिन्दगी है मोज से

इसी वेश मे अब सारे एकत्रित करने साधन हैं।
क्रिया-काण्ड दिखलाकर मुनि का पाना मनवाछित धन है ॥
धूल झोक सबकी आंखो मे काम बना लू मै अपना।
स्वर्ग-मोक्ष केवल सपना, फिर क्यो इसके पीछे खपना ?३७॥

सहनाणी

'कितना उत्तम मुनि का वाना, सीधा-सादा सयम-साधन।
इससे ही होता है प्रतीत, कितना उन्नत पावन जीवन ॥
हा ! उसी वेश मे दुनिया को, ठग खाना कितनी बात बुरी।
चरितार्थ जनोक्ति यहा होती, मधु से आप्लावित तीक्ष्ण छुरी ॥३८॥

दभी, पाखण्डी मुनियो से, यह साधु नाम बदनाम हुआ।
उनकी काली करतूतो का, हा ! कितना दुष्परिणाम हुआ ॥
उनके कारण सच्चे त्यागी सन्तो पर भी लगता लाछन।
निर्दोष, सदोषी कहलाते, मोठो मे पीसे जाते घुन ॥३९॥

अन्दर मे पीतल भी न मिले, ऊपर से दीख रहा सोना।
ऐसे सन्तो के पीछे ही, था बन्दर का सच्चा रोना।
बिल्ली की हज, बक-भक्ति देख, है स्वाभाविक विस्मित होना।
भीखरण ने कहा—हाथियो का यह भार गधो पर है ढोना ॥४०॥

बन पापश्रमरण करते अनर्थ, ऐसे सयम से पतित सन्त।
वे ढोग जमा ले एक बार, होता है उनका बुरा अन्त।
इससे साधु-सन्तो के प्रति, जन-आस्था आज फिसलती है।
इन आदर्शो की छाया मे, पापो की दुनिया पलती है ॥४१॥

[1] हुए आर्य आपाढभूति के, विचलित यो परिणाम।
प्रहर रात से ऊपर वीती, नही नींद का काम ॥
कर्म-गति वडी विचित्र अत हम इतना ही कह पाएगे।
हमारा है यह दृढ संकल्प धर्म-पथ पर डट जाएंगे ॥४२॥

---

१ लय—म्हांरा सतगुरु करत विहार

दोहा

बाहर फिर-फिर देखते, कब सोए ससार ।
पा करके एकान्त, मै सहसा करू विहार ॥४३॥

गीतक छन्द

ले सभी उपकरण अपने, चले आधी रात को ।
'इधर बारह बज गए' कोई न जाने बात को ॥
देखकर यह दृश्य भू, नभ और ककुभ अवाक है ।
चरण-तल ध्वनि कर रही, मानो कि मधुर मजाक है ॥४४

राधेश्याम

आगे आ-आकर आखो के रोक रहा था उनको तम ।
तो भी अनजाने पथ मे वे आगे बढने लगे कदम ॥
उल्लू रह-रह टोक रहे है, भौक रहे पीछे से श्वान ।
दु खित, विरहित, व्यथित कह रहे, यह क्या करते हो भगवान ॥

[1] जो थी जग को तारती, नैया डूब गई जी ।
नैया डूबी मझधार, कौन उसका हो आधार ।
टूटे डाड पतवार, नैया डूब गई जी ॥

कितना था शास्त्रो का ज्ञान, जिन-वाणी पर पूरा ध्यान ।
सारा भूल गए भान ॥४

कितना यत्ना का सुविवेक, रखते पाव देख-देख ।
तोडी कल्पाकल्प टेक ॥४

कितना ऊचा था आचार, कितना उत्तमतम व्यवहार ।
आज भ्रष्ट है विचार ॥४

देते औरो को प्रतिबोध, करते सत् तत्त्वो की खोज।
गड्ढा आज रहे खोद ॥४६॥

सबको जो आश्रय साह्लाद, देता था ऊचा प्रासाद।
स्वय हो रहा बरबाद ॥५०॥

देता वृक्ष जो फल-फूल, सब ऋतुओ मे जो अनुकूल।
टूटा हाय! उसका मूल ॥५१॥

सहनाणी

अनजाने उस नीरव पथ मे, आगे ही बढते जाते है।
निर्भय, कोई सकोच नही, मन कल्पित घडे लगाते है ॥
अब मै एकाकी हू स्वतन्त्र, कोई भी रहा नही बन्धन।
क्या बाधा रही? बिताऊगा मै मनमाना अपना जीवन ॥५२॥

दोहा

नृत्य, वाद्य, सगीत के, पडे कान मे शब्द।
तत्क्षण ध्यान गया उधर, रुके चरण निस्तब्ध ॥५३॥

विग्रहगति के जीव ज्यो, लेकर एक घुमाव।
शब्द जिधर से आ रहे, बढे उधर ही पाव ॥५४॥

सोत्सुक आते है निकट, जहाँ हो रहा नाट्य।
दर्शक बन करके खडे, हृदय उमग अकाट्य ॥५५॥

[1] उठ रही वाद्यो की धूकार सभी दर्शक है चित्राकार ॥

धो-धो धपमप मुरज वज रहे, वीणा की झकार।
धिधिकट-धिधिकट वजे नगारे, भू-नभ एकाकार ॥५६॥

उठे झनझना मधुर तमूरे, सारगी के तार।
जलतरग, शहनाई, ढोलक, तवले, झाझ, सितार ॥५७॥

---

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

मधुवन के मधुपो की-सी है, मधुर-मधुर गुजार ।
कलकठी की कलित काकली, खिले सहज साकार ॥५८॥

राधेश्याम

सोच रहे आषाढभूति देखो मेरा सौभाग्य खिला ।
मनमोहक माधुर्य भरा यह कैसा सुन्दर योग मिला ॥
अभी-अभी ज्यो ही मैने तोडा यह साधूपन का फन्द ।
त्यो ही स्वत सामने आया नर-जीवन का अमितानन्द ॥५९॥

[1] वास्तव मे तो मिला आज ही नर-जीवन का सार ।
इतने दिन तो ढोया केवल मानव-तन का भार ॥६०॥

प्रस्तुत अभिनेत्री का कैसा रूप-रग शृ गार ।
हाव-भाव-युत नृत्य कर रही स्वर्ग-परी साकार ॥६१॥

कैसा मधुर सुरीला गायन, हाथो की फटकार ।
जिसे देखने का अवसर जीवन मे पहली वार ॥६२॥

कलापूर्ण ये खेल दिखाते नव-नव नाटककार ।
लोक कर रहे करतल-ध्वनि से वाहा ! वाह ! की बौछार ॥६३॥

राधेश्याम

एकचित्त आषाढभूति है नाट्य देखने मे तल्लीन ।
ज्यो श्रोता आचार्यप्रवर के प्रवचन सुनने मे हो लीन ॥
हर्ष-ध्वनि के साथ हो रहा है अव नाटक का शुभ शेष ।
'वस इतने मे पूर्ण हो गया ?' बीती है मानो उन्मेष ॥६४॥

सहनाणी

ज्यो ही कुछ आगे बढे चरण नीरव कानन मे से होकर ।
वालू के वडे-वडे टिब्बे लगते है मानो शैल-शिखर ॥
वह निर्जन पथ अपरिचित-सा है, दूर-दूर तक वृक्ष नही ।
सुनसान विपिन मे एक-आध छोटे पौवे हैं कही-कही ॥६५॥

---

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

[1] आए रे, आए-आए इतने मे बालक दौडते।
वे रहे गुरुजी, यो कहते हर्षोत्सुक कर जोडते॥

तप्त स्वर्ण से उनके चेहरे, कोमल प्यारे-प्यारे।
झलक रही थी सहज सरलता, हसित वदन थे सारे रे॥६६॥

मानो श्रेष्ठ श्रेष्ठ सब पुद्गल, एकत्रित थे उनमे।
जागृत जिन्हे देखकर होता, मोह न किसके मन मे रे॥६७॥

एक समान मजु आकृतिया, सुन्दर कपडे पहने।
अल्प भार, बहुमूल्य वदन पर चमक रहे थे गहने रे॥६८॥

दीप्तिमान कानो मे कुण्डल, लोल कपोल-स्पर्शी।
मुक्ता, मणि, हीरो, पन्नो के हार हृदय आकर्षी रे॥६९॥

रत्न-जडित कण्ठी कण्ठो मे, कर कंकरण मणि-मण्डित।
हीरो की अक्षुद्र मुद्रिका, थी नवज्योति अखडित रे॥७०॥

सुन्दर रूप, वसन, भूषण से, द्विगुणित होकर निखरा।
चार चाद उसमे चमकाता, उनका नखरा चखरा रे॥७१॥

तुतली-तुतली प्यारी-प्यारी, मीठी-मीठी बोली।
बडी सुहानी, हृदय-लुभानी, सूरत भोली-भोली रे॥७२॥

लोम हर्ष उत्कठित होकर, एक एक से आगे।
देवकुमारो से छ बालक, आए भागे-भागे रे॥७३॥

दोहा

ज्यो ही आए सन्निकट, झटपट जूते खोल।
सविनय यत्ना सहित सब, रहे तिखुत्तो बोल॥७४॥

---

१. लय—म्हारी रस सेलडिया

[1] मत्थेण वदामि हाथ जोड सुखसाता।
सब बोल रहे है, जय गुरुवर जगत्राता।
देखो महाराज ! छओ हम बच्चे अच्छे।
दिल के सच्चे है, नही धर्म मे कच्चे ॥७५॥

जी भाई ! बोलो है क्या नाम तुम्हारे।
यो सज-धजकर कैसे आए हो सारे।
पृथ्वी, अप, तेउ, वायु, वनस्पति, त्रस है।
गुरुवर ! ये नाम हमारे बडे सरस है ॥७६॥

दोहा

हम सबके माता-पिता सदय हृदय गुरुदेव।
स्मरण रहे षट्काय, है उक्त नाम अतएव ॥७७॥

सहनाणी

जीवो का पिण्ड प्रभो ! पृथ्वी, हिंसा से बचना कठिन काम।
आधारभूत सबकी जिससे मेरा है 'पृथ्वीकाय' नाम ॥
बोला 'अपकाय' तडक कर जल आवश्यक जीवन मे अतीव।
नियमा 'वणस्सइ' की इसमे होते पृथ्वी से अधिक जीव ॥७८॥

राधेश्याम

नही गुरुजी इन दोनो से, बढकर भी 'तेजस'का काम।
भस्म बना देती है सबको, इससे मेरा 'तेउ' नाम ॥
मिट्टी जलकर, उदक उबलकर, होते मुनि के उपयोगी।
सीमित सीमा फिर भी काम सभी लेते रोगी-भोगी ॥७९॥

सहनाणी

है प्रभो ! पवन सबसे बढकर, कहते जन जिसको जगत-त्राण।
मारुत के बिना न कोई भी, ले सकता भगवन 'आणपाण' ॥

---

१ लावणी

पावक जलती है इसमे भी, इसका सहयोग अपेक्षित है।
मेरी माता ने दिया नाम, यह 'वायु' इसी से लक्षित है ॥८०॥

सर्वाधिक जीवो का समूह, गणना कायस्थिति है अनन्त।
औरो के चार वनस्पति के, छह भेद बताते है भदन्त ॥
एकेक देह चेतन अनन्त, पाएगे आप न और कही।
इससे है मेरा बडा नाम, गुरुदेव ! 'वनस्पति काय' सही ॥८१॥

राधेश्याम

ये स्थावर इनका साधारण जनता क्या जाने जीवत्व।
जगम सबको बोध कराता इससे त्रस का बडा महत्त्व ॥
इसकी हिंसा से बचना तो है श्रावक को भी अनिवार्य।
इसीलिए सबसे बढकर 'त्रसकाय' नाम है मेरा आर्य ! ॥८२॥

[१] महाराज ! हमने सीखा नवकार है।
साथ साथ अर्थ लिया धार ॥

सामायक लेनी और पालनी भी जानते।
देव - गुरु - धर्म तीनो तत्त्व पहचानते ॥
मानते हैं जीवन-आधार ॥८३॥

कण्ठस्थ सारे तीर्थकरो के नाम हैं।
गति, जाति, काय, इन्द्रिय जानते तमाम हैं ॥
ढाले भी याद दो-चार ॥८४॥

सन्नी, त्रस, बादर, पर्याप्त हे, यह ज्ञान है।
जीव भेद चवदहवाँ, पचम गुण स्थान है।
सारा है मा का उपकार ॥८५॥

---

१ लय—मुम्बई पधारो

करते है सायकाल सब मिल हम प्रार्थना ।
बोलते हैं साच साच बात करे व्यर्थ ना ।
सीखने को आगे तैयार ॥८६॥

हमको धरा दो बोल दो-चार काम के ।
साथ-साथ दिखला दो पाने चित्राम के ।
मानो जी मानो मनुहार ॥८७॥

दर्शन किए बिना न पीते हम दूध है ।
पहले सामायक है, पीछे खेल-कूद है ।
वन्दना हम देते दो बार ॥८८॥

आज तो अचानक ही गुरु-दर्श जो मिले ।
अन्तराय कर्म के है बन्धन सारे हिले ।
छाया है आनन्द अपार ॥८९॥

सहनाणी

बालक कहते बाते अपनी, पर गुरुवर का कुछ ध्यान और ।
बिल्ली की आँखे आखू पर, तकता सापो की ओर मोर ।
ज्यो-त्यो ये सब इनके गहने, मेरे हाथो मे आ जाए ।
हो जाए सारे मन इच्छित, बस काम पूर्णत बन जाए ॥९०॥

अगणित सम्पत्ति सहज सन्मुख, वर्षों ही यदि मै खप जाऊ ।
तो भी इतने धन-वैभव का, सचय मैं कभी न कर पाऊ ।
कोई न देखने वाला है, झटपट इनसे छीनू गहने ।
इनको पहुचाऊँ परम-धाम, मैं हया दया को दू रहने ॥९१॥

[1] देखो मानव से यह धन कैसा ? अन्याय कराता है ।
उसकी मनन-शक्तियाँ सारी, बिलकुल सुप्त बनाता है ॥

---

१ लय—म्हारा लाडला जवाई

होता आभूषण शृंगार, वह ही बनकर के तलवार।
हा हा गला कटाता है ॥९२॥

जो धन कहलाता है त्राण, वह धन ले लेता है प्राण।
उत्पथ मे ले जाता है ॥९३॥

जो धन सुखसुविधा का साधन, जिससे चलता है गृहजीवन।
कितनी व्यथा बढाता है ॥९४॥

होते वडे-वडे उत्पात, अच्छे कामो मे व्याघात।
परस्पर द्वन्द्व मचाता है ॥९५॥

राधेश्याम

देखा जाता प्राय जोखिम नही कही है काया को।
पर पग पग पर डर रहता है इस दुनिया मे माया को।
कुछ क्षण पहले जो आभूषण बने हुए थे रूप-विलास।
वे ही हाय कराते देखो, बच्चो के जीवन का नाश ॥९६॥

गीध-दृष्टि से दूर-दूर तक, पैनी नजर निहार रहे।
वन करके लोभान्ध आज वे कुछ भी नही विचार रहे।
नही दृष्टिगत पशु-पक्षी भी क्या मानव का नाम निशान ?
चारो ओर रेत के टिब्बे नीरव पथ अरण्य सुनसान ॥९७॥

दोहा

बिल्ली की ज्यो झपट कर, पकडा पृथ्वीकाय।
गला दबोचा हाथ से, वह रोता असहाय ॥९८॥

[1] अरे ! कोई तो आओ, अरे ! कोई तो आओ।
मार रहा यह राक्षस, इससे मुझे बचाओ ॥

पहन लिया साधुका बाना, हमने सच्चा साधु माना।
हत्यारे से कोई आकर मुझे छुडाओ ॥९९॥

---

१ लय—याद कालू की आए

हाय पकडली मेरी गरदन, छीन रहा यह मेरा जीवन।
कोई तो आकर इसको दो हाथ दिखाओ ॥१००॥

आखे निकल रही है बाहर, रू रू काप रहे है थर-थर।
अति क्रन्दन करता, अब क्या करू बताओ ॥१०१॥

दोहा

किन्तु कौन वहा पर सुने, उसकी करुण पुकार।
गला मोड झट मारकर, गहने लिए उतार ॥१०२॥

सहनाणी

थर थर कर काप रहे सारे, आखो से बही अश्रुधारा।
क्या जाने क्या कर डालेगा, हम सबका भी यह हत्यारा॥
हक्के बक्के हा हा! करते वे पाचो बालक तडफ रहे।
यह दृश्य भयानह देख देख जाते हैं उनके हृदय दहे ॥१०३॥

दोहा

टिक भी सकते है नही, और न सकते भाग।
भय से अस्त-व्यस्त हैं, उनका आज दिमाग ॥१०४॥

अब पकडा अपकाय को, बोल रहा अति दीन।
तडफड तडफड कर रहा, नीर बिना ज्यो मीन ॥१०५॥

[1] गुरुजो! मत मारो, मै हूँ निर्बल अपकाय।
मत मारो करुणा धारो, मै हूँ दुर्बल असहाय॥

होकर सयमवान यो, क्यो करते हत्या हाय!
एक आपके पाप मे, होगा लाछित समुदाय ॥१०६॥

बच्चा कच्चा हू प्रभो! मै दीन हीन निरुपाय।
यो! नृशस हो मारना, है महाघोर अन्याय ॥१०७॥

---

१ लय—बगीची निम्बुआ की

दोहा

कहने वाला कौन तू, अरे ! न्याय अन्याय ।
अर्थार्जन सबसे बडा, आज विश्व मे न्याय ॥१०८॥

[1] उस करते बालक को, हा उसी तरह से मारा ।
भर लिया पात्र झट अपना, जेवर उतार कर सारा ।
जा एक बून्द पानी की, छूते दयार्द्र बन जाते ।
करते हत्या बालक की, किंचित कम्पन ना लाते ॥१०९॥

दोहा

झपटे तेजस्-काय पर, पकडा गला दबोच ।
रो रो वह कहने लगा रे साधु ! कुछ सोच ॥११०॥

[2] अरे ओ हत्यारे ! कुछ तो बात विचार ।
प्राण सबको प्यारे, कुछ तो बात विचार ॥

देखने मे तो तू है सन्त, और लगता आचार्य महन्त ।
क्रूर बनकर के यो अत्यन्त, नरक मे मत जा रे ॥१११॥

निहारे हमने है चित्राम, करेगा जो भी ऐसा काम ।
अन्त मे होगा दुष्परिणाम, हृदय को समझा रे ॥११२॥

बाल-हत्या है भारी पाप, बताते सारे आगम साफ ।
पडेगा करना पश्चात्ताप, जरा करुणा ला रे ॥११३॥

दोहा

स्वार्थी लोगो के रचे, आगम सारे व्यर्थ ।
मै आगाम का क्या करू, मुझे चाहिए अर्थ ॥११४॥

---

१ लय—इठलाना सब ही छोडो
२ लय—रे पछी बावरिया

गीतक छन्द

अहो ! नर-भक्षक बने वे एक सुनते बात ना ।
मारते यो बालको को हाय ! थकते हाथ ना ।
मार उसको तोड गहने, भर लिया है पात्र को ।
दौड पकडा वायु को झट, फेक तेजस गात्र को ।।११५।।

राधेश्याम

दीन वदन वह वायुकाय, चरणो मे गिर रोता रोता ।
दो बाते कहना चाहता, उनसे अचेत होता होता ।।
सुनने मे आता है, होते करुणा के सागर मुनिराज ।
सूर्य आज पश्चिम मे कैसे उदय हो रहा है, मुनिराज ।।११६।।

[1] दया करोजी दया करो, बालक पर कुछ दया करो ।
हया करोजी हया करो, दीन दयालो ! मया करो ।।

त्यागी आप बडे गुरुदेव ! मूर्ति दया की हैं स्वयमेव ।
अपने पद का ध्यान धरो ।।११७।।

सागर करुणा के हैं आप, अल्प मात्र भी करे न पाप ।
यह मन का आवेश हरो ।।११८।।

हो छव काया के प्रभु त्राण, गुरुवर अप्राणो के प्राण ।
अब अपना कर्तव्य स्मरो ।।११९।।

बालक हूं मै प्रभो ! अबोध, नही किसी से करू विरोध ।
मार मुझे क्यो पाप भरो ।।१२०।।

दोहा

बीती वय करते दया, कुछ भी मिला न सार ।
अब यह दृढ निश्चय किया, दया मया बेकार ।।१२१।।

---

१ लय—जावणद्यो रे भाई

तत्क्षण कण्ठ मसोस कर लिया उसे भी मार ।
पत्थर के आगे सभी, विनती है निस्सार ॥१२२॥

त्वरित वनस्पति-काय के, दिया गले पर हाथ ।
रो रो कर कहने लगा, सुनो सुनो हे नाथ ॥१२३॥

[१] गुरुजी ! कृपया अब मुझे न मारो, तुम करुणा दृष्टि निहारो ।
रह रह करता मै करुण पुकार हू, हो मेरे मा बापो का मैं ही आधार हू ॥

मेरे परिकर मे कोई भी और नही है बच्चा ।
आगे पीछे प्रभो एक मै, बोल रहा हू सच्चा ॥
होगी भारी यह कृपा तुम्हारी, होऊगा मै आभारो ।
चाहता बस इतना सा उपकार हूँ ॥१२४॥

मेरे मरते ही सोचो ! वे कितने दु ख पाएगे ।
रो रो झूर झूर कर बाबा ! वे भी मर जाएगे ।
थोडी उनकी भी दशा विचारो, मेरे प्राण उबारो ।
जो आज्ञा दो, करने तैयार हू ॥१२५॥

दोहा

किस किस की सोचू अरे ! मै सुख दु ख की बात ।
चुप रह मेरे काम मे, रे ! मत बन व्याघात ॥१२६॥

[२] कर सुनी अनसुनी उसकी सारी बाते ।
झट गरदन तोड उसे पर भव पहुचाते ।

अब एक रहा है छोटा सा शिशु बाकी ।
जो झाक रहा जीवन की अन्तिम झाकी ।
अब निर्दय बन उस पर भी हाथ उठाते ।
इस साधु वेश पर हाय ! कलक चढाते ॥१२७॥

---

१ लय—झूठी-झूठी दुनिया की
२ लावणी

[1] ले लो गहने सारे जी क, ले लो गहने सारे जी।
मुझे छोड दो जीवित, पकड़ू पाँव तुम्हारे जी ॥

मार दिया इन पाँचो को तुमने ये गहने लेने।
मुझे छोड दो मै सहर्ष हू प्रस्तुत सब कुछ देने ॥१२८॥

नही किसी को कभी कहूगा, यहाँ से भग जाऊगा।
जीवन भर गुरुदेव तुम्हारी, गुन गाथा गाऊगा ॥१२६॥
अणुव्रती भी कभी न करते, निरपराध त्रस-हत्या।
महाव्रती हो, हाय! तुम्हारी निकल गई क्यो सत्या? १३०॥

एकबार मरना है बाबा! हम तो मर जाएगे।
जीवन मृत्यु समान समझकर, स्वर्ग लोक पाएगे ॥१३१॥

बोलो पकडे गए अगर तो तुम कहा पर जाओगे।
अब भी जाओ सभल, नही तो आगे दुःख पाओगे ॥१३२॥

दोहा

बार-बार बालक उन्हे, रोक रहा है टोक।
"किसने देखा है अरे! स्वर्ग, नरक, परलोक" ॥१३३॥

वर्तमान मे धन मिले, क्या आगे का सोच।
यो कह, झट मारा उसे, निर्दय गला दबोच ॥१३४॥

[2] देखोजी देखो, कैसा परिवर्तन आया।
देखोजी देखो, बदली है मुनि की काया।
मानो यो लगता, युग ने पलटा खाया ॥

धन को जो थे धूल समझते, जो अपरिग्रह महाव्रत भजते।
उनका भी जी ललचाया ॥१३५॥

---

१ लय—रुठोडा शिव शकर
२ लय—वदीर्ना करना

चीटी को भी जो न सताते, वे बच्चो पर हाथ चलाते ।
करुणा-भाव मिटाया ॥१३६॥

जो अदत्त लेते न कभी तृण, लूट रहे वे तन-धन, जीवन ।
हा ! सारा भान भुलाया ॥१३७॥

विषय-वासना के जो त्यागी, आज हो रहे वे अनुरागी ।
प्रबल मोह की माया ॥१३८॥

राधेश्याम

एक बडा-सा गर्त खोदकर, छवो शवो को गाड दिया ।
ऊपर से कर धूलि बराबर, आगे को प्रस्थान किया ॥
सोच रहे है आज मनोरथ सफल हो रहे हैं सारे ।
सहज प्राप्त अब हो जाएगे, जीवन-सुख-साधन प्यारे ॥१३९॥

सहनाणी

देखो मैं कितना सौभागो, यह सीधी मुझे मिलो लक्ष्मी ।
अब मेरे रहने पाएगी, सुख-सुविधा मे कोई न कमी ॥
जाते ही अच्छा शहर देख, सुन्दर प्रासाद बनाऊगा ।
मखमल की कोमल शय्या मे सुखपूर्वक समय बिताऊगा ॥१४०॥

[1] अब बन जाऊगा, मैं तो सुखी महान ।
सब मे पाऊँगा, मै ऊँचा सम्मान ॥

ज्यो ही निकला उस बन्धन से, पात्र भर गए देखो घन से ।
रहा न कुछ व्यवधान ॥१४१॥

सभी पास मे होगे साधन, परमानन्दित मेरा जीवन ।
सब जग का सधान ॥१४२॥

मेरा दिया सभी खाएगे, दौडे बीसो जन आएगे ।
करते ही आह्वान ॥१४३॥

---

१. लय—तोता उड जाना

नाना वाद्यो की धुकारे, नृत्य मनोहर प्यारे-प्यारे ।
होगे सुन्दर गान ॥१४५॥

पाच इन्द्रियो के सारे सुख, प्रस्तुत होगे मेरे सम्मुख ।
मैं कृतपुन्य महान ॥१४५॥

यो मन ही मन धडे लगाते, परम हर्ष से बढते जाते ।
नही पन्थ का ध्यान ॥१४६॥

[1] धन की धुन मे कैसे-कैसे होते है अन्याय ।
छ नृशस हत्याएं करते ग्लानि हुई नही हाय !
ऐसे पापो की जड धन से, मन को सदा हटाएगे ।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥
हम डट जाएगे, नही किंचित घबराएगे ।
समय पर कडे परीक्षण मे भी हम साहस दिखलाएगे ॥१४७॥

१. लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

३

सहनाणी

चलते-चलते रुक गए चरण, कुछ पडा कान मे कोलाहल ।
सकल्प विकल्प लगे उठने, यहा पर यह कैसी है हलचल ?
सीधा पथ छोड चले तिरछे, जिससे कोई न देख पाए ।
अति तीव्र चाल से बढे पाव, उनके घबराए-घबराए ॥१॥

दोहा

श्रावक दौडे आ रहे, मिलकर सारे साथ ।
उन्हे सुनाई पड रही, उन लोगो की बात ॥२॥

[1] दौडो रे दौडो साधुजी इधर किधर हैं जा रहे ।
परिचित सा लगता हमे इनके चेहरे का आकार रे ॥

परिचित क्या ये तो सही, आषाढभूति गुरुराज रे ।
नही नही रहते नही, ऐसे एकाकी गणिराज रे ॥३॥

भाई जी कुछ भी कहो, ये आर्यप्रवर साक्षात रे ।
शर्त रही उपवास की, यदि सही नही हो बात रे ॥४॥

मैने इनके पास मे, किया बहुत ज्ञान-अभ्यास रे ।
निश्चित ही गुरुदेव है, मेरा अटल आत्म-विश्वास रे ॥५॥

जिनके दर्शन को चले, हम सभी सभाकर सघ रे ।
पूर्ण हो रही पथ मे, अहो ! सारी हृदय उमग रे ॥६॥

सच-सच ये गुरुदेव ही, पर होता आश्चर्य रे ।
एकाकी कहा जा रहे, है इसका क्या तात्पर्य रे ॥७॥

---

१ लय—भीखणजी स्वामी भारी मर्यादा बाधी

दोहा

हो बद्धाञ्जलि दूर से, कर एकाग्र विचार।
किया उत्तरासग, ले अचित्त, सचित परिहार ॥८॥

विधिवत् पाचो अभिगमन, कर वन्दन वर रीत।
मुक्त कंठ गुण गा रहे, सब श्रावक सुवनीत ॥९॥

[1] अहा ! धन्य भाग्य सौभाग्य आज, गुरुवर के दर्शन पाए है।
उल्लसित हो रहा है तन, मन, जीवन उपवन सरसाए है ॥

अभिलसित स्वर्ण रवि उदित, हुआ, नभ से वरसी गोरस-धारा।
चिर चिन्तित देखो आगन मे, ये कल्पवृक्ष लहराए है ॥१०॥

अघ धोने जगम तीर्थ मिले, कर्मो के बन्धन हुए शिथिल।
टूटी अचिन्त्य यह अन्तराय, हृद हर्ष-मेघ मडराए है ॥११॥

जगल मे मगल आज हुआ, अविरल आनन्द स्रोत उमडा।
पर एकाकी भीषण वन मे, यहा आप कहां से आए है ॥१२॥

दोहा

आवृत कर वास्तविकता, ले लम्बा नि श्वास।
दिखा खिन्नता आर्यवर, करते वाणि-विलास ॥१३॥

[2] "भावी बलवान भाई ! भावी वलवान है।
इसके आगे चलता न कोई व्यवधान है ॥

भावी के सामने चलता न जो है।
क्षण भर मे कर देती और का ही और है।
भाविनी की कर्म रेखा इसका प्रमाण है ॥१४॥

---

१. लय—गुरुदेव तुम्हारे चरणो मे
२ लय—देश के विद्यथियो से

३

सहनाणी

चलते-चलते रुक गए चरण, कुछ पडा कान मे कोलाहल ।
सकल्प विकल्प लगे उठने, यहा पर यह कैसी है हलचल ?
सीधा पथ छोड चले तिरछे, जिससे कोई न देख पाए ।
अति तीव्र चाल से बढे पाव, उनके घबराए-घबराए ॥१॥

दोहा

श्रावक दौडे आ रहे, मिलकर सारे साथ ।
उन्हे सुनाई पड रही, उन लोगो की बात ॥२॥

[१] दौडो रे दौडो साधुजी इधर किधर है जा रहे ।
परिचित सा लगता हमे इनके चेहरे का आकार रे ॥

परिचित क्या ये तो सही, आषाढभूति गुरुराज रे ।
नही नही रहते नहीं, ऐसे एकाकी गणिराज रे ॥३॥

भाई जी कुछ भी कहो, ये आर्यप्रवर साक्षात रे ।
शर्त रही उपवास की, यदि सही नही हो बात रे ॥४॥

मैने इनके पास मे, किया बहुत ज्ञान-अभ्यास रे ।
निश्चित ही गुरुदेव है, मेरा अटल आत्म-विश्वास रे ॥५॥

जिनके दर्शन को चले, हम सभी सझाकर सघ रे ।
पूर्ण हो रही पथ मे, अहो ! सारी हृदय उमग रे ॥६॥

सच-सच ये गुरुदेव ही, पर होता आश्चर्य रे ।
एकाकी कहा जा रहे, है इसका क्या तात्पर्य रे ॥७॥

---

१ लय—भीखणजी स्वामी भारी मर्यादा बांधी

दोहा

हो बद्धाञ्जलि दूर से, कर एकाग्र विचार।
किया उत्तरासग, ले अचित्त, सचित परिहार ॥८॥

विधिवत् पाचो अभिगमन, कर वन्दन वर रीत।
मुक्त कठ गुण गा रहे, सब श्रावक सुवनीत ॥९॥

[1] अहा ! धन्य भाग्य सौभाग्य आज, गुरुवर के दर्शन पाए है।
उल्लसित हो रहा है तन, मन, जीवन उपवन सरसाए है॥

अभिलसित स्वर्ण रवि उदित, हुआ, नभ से वरसी गोरस-धारा।
चिर चिन्तित देखो आगन मे, ये कल्पवृक्ष लहराए हैं ॥१०॥

अघ धोने जगम तीर्थ मिले, कर्मों के बन्धन हुए शिथिल।
टूटी अचिन्त्य यह अन्तराय, हृद हर्ष-मेघ मडराए है ॥११॥

जगल मे मगल आज हुआ, अविरल आनन्द स्रोत उमडा।
पर एकाकी भीषण वन मे, यहा आप कहा से आए है ॥१२॥

दोहा

आवृत कर वास्तविकता, ले लम्बा नि श्वास।
दिखा खिन्नता आर्यवर, करते वाणि-विलास ॥१३॥

[2] "भावी वलवान भाई ! भावी वलवान है।
इसके आगे चलता न कोई व्यवधान है॥

भावी के सामने चलता न जो है।
क्षण भर मे कर देती और का ही और है।
भाविनी की कर्म रेखा इसका प्रमाण है ॥१४॥

---

१ लय—गुरुदेव तुम्हारे चरणो मे
२ लय—देश के विद्यार्थियो से

भीषण महामारी की फैली बिमारी।
जनता सत्रस्त हुई रोगाकुल सारी।
चहल-पहल रहती जहा हुआ श्मशान है ॥१५॥

शिष्य सारे आ गए बीमारी की फेट मे।
हस-हस के चढ गए महामारी की भेट मे।
प्राप्त पडित-मरण किया अपना कल्याण है ॥१६॥

करके सम्पन्न शुद्ध सयम की साधना।
चढते भावो से अतिम अनशन आराधना।
दे गए सब आत्म-बल का परिचय महान है ॥१७॥

स्वप्न मे भी कल्पना थी जिसकी कभी नही।
नयनो से मैने देखा साकार है सही।
अतएव एकाकी यह मेरा प्रयाण है ॥१८॥

तहनाणी

अति शीघ्र दूसरे गण मे जा, अत्यन्त समाधि-युक्त सयम।
निर्वहन करूगा निर्भय हो, वाणी, मन, पाचो इन्द्रिय दम ॥
पथ मत रोको अब जाने दो, देखो दिनकर चढता जाता।
मै बूढा हू धीरे चलता, है तीव्र घाम बढता जाता ॥१९॥

अहा! धन्य धन्य गुरुदेव! आप है त्यागी कितने आत्मार्थी।
फिर कमल तुल्य निर्लेप और, निर्गौरव कितने निस्स्वार्थी।
हो गए शिष्य सब देवलोक, उनका किंचित् भी मोह नही।
सुखपूर्वक हो सयम-यापन, मन एक लगी है लगन यही ॥२०॥

यह वृद्धावस्था गुरुवर की, कधो पर कितना भार भरा।
चलने मे कठिनाई होती, पर सबल आत्मबल सार भरा।
क्या सहज सौम्यता झलक रही, बहती है क्षान्ति, दान्ति धारा।
आर्जव, मार्दव, लाघव, सयम, है तप पूत जीवन सारा ॥२१॥

[1] गुरु मिले तो ऐसे भागी।
काचन कामिनी के त्यागी॥

सत्य अहिसा के सेनानी।
सबल मनोबल सच्चे ज्ञानी।
समता रस के अनुरागी॥२२॥

छोड़ा धन को धूल समझ के।
जग माया की ममता तज के।
बने मुक्ति के रागी॥२३॥

ब्रह्मचर्य की ज्योति जगाते।
सच्चे सुख की राह बताते।
उपशान्त विषय की आगी॥२४॥

शुद्ध रीति से भिक्षा लेते।
जनता की जडता हर देते।
दिल के पूर्ण विरागी॥२५॥

लालच की कोई बात नही है।
स्वार्थ-सिद्धि की घात नही है।
'तुलसी' बडे दिमागी॥२६॥

[2] हे दयालो देव! थोडी-सी दया हम चाह रहे।
कर कृपा जल्दी पधारो, भावना हम भा रहे॥

विनय यहा पर ठहरने की, हम नही करते प्रभो!
हो नही किचित् असाता, सर्वदा साता रहे॥२७॥

---

१. लय—मेरा रग दे तिरगी चोला
२. लय—हे दयालो देव तेरी

किन्तु होगी आर्य ! करनी, कुछ यहा पर गोचरी ।
भाव है उत्कृष्ट सबके, क्यो हमे तरसा रहे ॥२८॥

लो कृपालो ! अधिक अब मत आप देर लगाइए ।
दर्शनार्थी दूर से हम सघ लेकर आ रहे ॥२९॥

श्रावको का बारहवा व्रत, आप ही के हाथ है ।
तार दो हे तरन तारन ! भाव चढते जा रहे ॥३०॥

सहनाणी

है अभी न अवसर रुकने का, यह चलने का ही प्रथम याम ।
करने से यो पथ मे आहार, सोचो ! वढता है वडा काम ॥
पर गुरुवर ! दया-दृष्टि करके, दर्शन तो सबको दिलवाए ।
वे छोटे-बडे, बाल-बच्चे, उत्कठित सारी महिलाए ॥३१॥

दोहा

उन लोगो की अन्त मे, पडी माननी बात ।
चल आए जहा सघ था, जय-नारो के साथ ॥३२॥

राधेश्याम

छोटे-छोटे वालक भी चरणो मे शीश झुकाते है ।
हाथ जोडकर सुख पृच्छा, सब हार्दिक भक्ति दिखाते है ।
आज हुए कृत-कृत्य सभी हम, देखो घर आए भगवान ।
वहने करती सविनय वन्दन, गाती मीठे स्वागत-गान ॥३३॥

[1] सौभाग्य से हमारे, आचार्यवर्य आए ।
गण-गगन के सितारे, आचार्यवर्य आए ॥

है आगमोक्त आठो, सम्पन्न सम्पदाए ।
मिलती सदैव इनसे, अध्यात्म प्रेरणाए ॥३४॥

---

१ लय—इतिहास गा रहा है

सब शान्त वृत्तिया है, निश्छद्म भावनाए ।
निस्सगता निराली, मधुर स्वरेण गाए ॥३५॥

गुरुवर शुभागमन से, सब पूर्ण कामनाए ।
उल्लास जो हृदय का, वर्णों से क्या बताए ॥३६॥

लो भक्ति-भाव सादर, श्रद्धाऽर्घ्य हम चढाए ।
सुस्वागतम् हृदय-धन ! आनन्द हम मनाए ॥३७॥

[1] रहे कहां रे ! रहे कहा, वे छः बच्चे रहे कहा ?

पृथ्वी, अप, तेउ, वायु नाम, वणस्सइ त्रस शुभ परिणाम ।
रहती पूरी लगन लगी, हृदय धर्म की ज्योति जगी ।
नही दीखते अभी यहा ? वे छ बच्चे रहे कहा ? ॥३८॥

सुनते ही सन्तो का नाम, छोड दौडते सारे काम ।
सहज सरल वे बडे विनीत, वन्दन करते थे वर रीत ॥
मुनि को लेते देख जहा, वे छ बच्चे रहे कहा ? ॥३९॥

स्वयं पधारे है गुरुराज, धन्य सुमगल वेला आज ।
होता उनको कितना हर्ष, कर लेते यदि चरण-स्पर्श ।
ढूढो जाकर जहा-तहा, वे छ बच्चे रहे कहा ? ॥४०॥

दोहा

मिले नही बच्चे कही, यत्र तत्र सर्वत्र ।
पूछ रहे गुरुवर्य से, हो परिकर एकत्र ॥४१॥

सोरठा

देखे हैं बच्चे, गुरुवर ! क्या पथ मे कही ?
जीवन-धन सच्चे, प्राणो से भी प्रिय हमे ॥४२॥

---

१ लय—जावणद्यो रे भाई

"देखे नही कही, आया हू मै जिधर से"।
कैसी झूठ कही, पाप छुपाने को अहो! ॥४३॥

राधेश्याम

बाढ स्वर बच्चो को टिब्बे पर चढ-चढकर रहे पुकार।
किन्तु नही कोई प्रत्युत्तर सारा श्रम उनका बेकार॥
पता नही है इस कानन मे निकल पडे वे छवो किधर।
बुलवा पद-चिन्हो के ज्ञाता भेज रहे हैं इधर-उधर॥४४॥

दोहा

श्री गुरुवर का आगमन, छाया हर्ष अभिन्न।
इधर नही बच्चे मिले, इससे सभी विखिन्न॥४५॥

बच्चो की तो बाद मे, होगी खैर! तलाश।
व्रत तो निपजालो मिला, अनायास अवकाश॥४६॥

सहनाणी

आचार्य प्रवर करते चिन्तन, यह तो बिगडी जाती स्थिति है।
कैसे यहा से निकला जाए, कुछ काम नही देती मति है॥
रह-रहकर व्रत निपजाने की, करते है सारे मनुहारे।
किसमे बहरू मै, गहनो से मेरे तो पात्र भरे सारे॥४७॥

[१] बोले श्रावक सब, करो देर मत भाई।
गुरुवर को जाना दूर धूप चढ आई॥
लो, एक साथ ही व्रत निपजालो सारे।
भारी करुणा कर शासन-नाथ पधारे।
अब कृपा-सिन्धु लो मत हमको तरसाओ।
दो पात्र-दान का लाभ, दया दिखलाओ॥४८॥

---

१. लावणी

हम अधिक नही हठ करते हैं गुरुवरजी।
ले लो आहार, जल जितना भी हो मरजी ॥
प्रासुक सब द्रव्य पडे है दूर सचित्त से ।
ऊपर से ढके हुए हैं प्रभो! अचित्त से ॥
होता विलम्ब मत व्यर्थ हमे ललचाओ।
दो पात्र-दान का लाभ, दया दिखलाओ ॥४९॥

सहनाणी

"हे नही श्रावको! अभी नही, कुछ भी लेने का यह अवसर।
जाना है दूर मुझे देखो! ऊपर चढता जाता दिनकर ॥
चलने मे कठिनाई होगी, कर लेने के पश्चात अशन।
हो स्वय विज्ञ, साता वछक, समझा लो अपना-अपना मन ॥५०॥

[1] व्रत तो निपजाना ही होगा, ऐसे तो नही जाने देगे।
घर तो फरसाना ही होगा, ऐसे तो नही जाने देगे ॥

आग्रह तो करवाना अपने शासन की है रीत।
किन्तु आपके ही गुरुवर! हम श्रावक है सुविनीत।
लाभ पूरा लेगे ॥५१॥

वही करेगे आर्यप्रवर, जैसा देगे आदेश।
गुरुवर! होगा नही आपको इससे किंचित क्लेश।
न ज्यादा वहराएगे ॥५२॥

दोहा

नही नही आचार्यवर, करते वारम्वार।
प्रत्युत वढती जा रही उन सवकी मनुहार ॥५३॥

---

१ लय—शर बाधे कफनवा रे

[1] ऐ करुणा सागर गुरुवर ! अब क्यो तरसाते हैं ?
यो आर्यप्रवर चरणो मे, विनती सुनाते है ॥

गुरुदेव ! हमे तो केवल आश्रय है आपका ।
यो ना ना कह मन को क्यो, चोटे पहुचाते है ॥५४॥

जो सहज वस्तु का होता, घर मे सयोग है ।
भोजन के पूर्व भावना, हम प्रतिदिन भाते हैं ॥५५॥

बहराए विना न आता, भोजन मे स्वाद है ।
मुनि को देने बच्चे भी, रोते रुक जाते है ॥५६॥

क्यो अस्वीकृत करते यह, छोटी सी प्रार्थना ।
त्रुटि हो यदि प्रभो ! क्षमा की, हम भिक्षा चाहते हैं ॥५७॥

हे क्षमाश्रमण ! हठ की भी, कुछ सीमा होती है ।
अब अधिक न ताने स्वामिन् ! अन्तर अकुलाते है ॥५८॥

यो अन्त किसी का लेना, समुचित है क्या प्रभो ?
कहते-कहते नयनो मे, आसू भर आते है ॥५९॥

गीतक छन्द

परखता हू श्रावको ! मै तुम सभी की भावना ।
किन्तु कोई द्रव्य की है इस समय मे चाहना ।
श्रावको के हाथ झोली की तरफ जाने लगे ।
खोल दो झोली यही स्वर कान मे आने लगे ॥६०॥

राधेश्याम

यह सुनते ही उत्तेजित हो, बोले करके आखे लाल ।
अपने उन कम्पित हाथो से, झोली भण्डो को सभाल ॥
श्रावक कहलाते हो तुम सब, पर थोडा भी नही विवेक ।
मूर्ख कही के ? मिले एक से, बात न करते अवसर देख ॥६०॥

---

१. लय—प्रभु पार्श्वदेव चरणो मे

सहनाणी

मैने देखे श्रावक अनेक पर ऐसा हठ देखा न कही।
रे! यो अनुचित आग्रह करते क्या होता है सकोच नहीं ।।
श्रावक सुविनीत कहे प्रभु ने इगित आकार विज्ञ सच्चे।
फिर क्यो इतनी जडता करते क्या तुम कोई नन्हे बच्चे ?६२।।

धीरज से मै समझाता हू, फिर भी क्यो यह खीचातानी ?
अवसर होता यदि भिक्षा का, मै क्यो करता आनाकानी ?
सामान्य साधु से भी अति हठ, श्रावक को उचित नही करना।
उसमे भी अरे! सघपति से क्यो है, असातना का डर ना ?६३।।

रखा क्या समझ मुझे तुमने ? मै अप्रतिबद्ध विहारी हू।
है नही अपेक्षा तुम सबकी, मै फक्कड स्वेच्छाचारी हू ।।
ऐसे उद्दड श्रावको से, तो रहना समुचित सदा परे।
करते उत्तप्त प्रदेशो को, सान्त्वना दूर ही रही अरे!६४।।

[1] मानो मानो जी गुरुदेव! मानो हार्दिक प्रार्थना।
परखो परखो जी स्वयमेव स्वामिन् अन्तर-भावना ।।

आप दयालु देवता रे! शान्त मूर्ति साकार।
शीतल आर्य! शशाक से रे अगणित गुण-भण्डार ।।६५।।

शासन-नायक आप ही है आशा के आधार।
कहो आपको छोडकर हम कहा पर करे पुकार ।।६६।।

बडी कृपा की आपने दी शिक्षा हमे अमूल्य।
आज भरत मे आप ही हैं तीर्थंकर के तुल्य ।।६७।।

सीमा मे रहते सदा है सागर वर गभीर।
ध्रुव सा अविचल धैर्य सद्गुरु धरणी मे है धीर ।।६८।।

१ लय—थे तो सुणो रे सुजान

व्यर्थ विलम्ब न कीजिए, कर करुणा शासन-नाथ।
व्रत तो निपजाना ही होगा, रखनी होगी बात ॥६९॥

लो लो खोलो झोली तारो तारो तारणहार।
हाथ पकड गुरु देव का सब करते अति मनुहार ॥७०॥

राधेश्याम

रोषारुण हो भृकुटी चढाकर गर्जे उठे तत्क्षण गुरुराज।
यो हाथापाई करते क्या आती नही श्रावको लाज?
रे मै क्या कोई साथी हू, जो करते हो मनचाही।
बोलो! गुरु के वचनो पर भी क्यो इतनी लापरवाही?७१॥

खबरदार! है मेरी झोली को कोई भी मत छूना।
दूगा दण्ड कठोर अन्यथा मैं साधारण साधु हू ना॥
यो सुनते ही उत्तेजित हो श्रावक लोग लगे कहने।
अल श्रमेण, आर्यवर! इतनी अब कठोरता दे रहने ॥७२॥

[1] बालको की भान्ति गुरुजी! क्या डराते है हमे?
जानते सब रीतिया फिर क्या सिखाते है हमे?

दिया प्रभु ने श्रावको को पूर्णत अधिकार है।
भक्ति है हम मे भरी आनन्द के सस्कार हैं।
सुने हमने सूत्र, शिक्षा क्या सुनाते है हमे ॥७३॥

श्रावको को तो कहा माता-पिता के तुल्य है।
श्रावको की प्रार्थना का भी प्रभो! कुछ मूल्य है।
है सभी सुविनीत अब पथ क्या बताते है हमे ॥७४॥

एक हो या लाख हो हम आज छोडेगे नही।
अरे! इतनी प्रार्थना क्या व्यर्थ जाएगी कही?
यो डराकर छोड जाना, क्या चाहते है हमे?७५॥

---

१. लय—दिल से शासन मे रमे

श्रावको के ही सहारे साधुओ की साधना।
श्रावको के ही सहारे मोक्ष की आराधना।
आप ऐसे लाल आखे क्या दिखाते है हमे ?७६॥

हम नही है आज के श्रावक पुराने हैं सभी।
नही करवाई कहो क्या गोचरी अब तक कभी ?
बन्दरी इन घुडकियो से क्या दबाते हैं हमे ?७७॥

दोहा

अरे ! देखते क्या खडे, पकड़ो झोली शीघ्र।
निपजालो व्रत-बारमा, हिलमिल सब अव्यग्र ॥७८॥

सहनाणी

ज्यो ज्यो श्रावक हट करते है, त्यो त्यो वे कसते हैं झोली।
इतने मे आगे आई है कुछ मिल नवयुवको की टोली।
व्रत निपजाने को झटका देकर के ज्यो ही झोली खोली।
आखो के आगे अन्धेरी आई, झट बन्द हुई बोली ॥७९॥

दोहा

झोली खुलते ही रहे, सारे लोक अवाक्।
पात्रो मे गहने भरे, अजब रूप यह झाक ॥८०॥

हमने समझा ये बडे, वैरागी आचार्य।
छी छी ! इनके हाथ से, होता हाय ! अकार्य ॥८१॥

खोले कैसे पात्र ये, ले कैसे आहार।
भीतर यह गीदड घुसा, छोडा सब आचार ॥८२॥

छुपा रत्न उपकरण मे, अर्थार्जन पर चोट।
बोलो ! वे कैसे करे, जब अन्दर मे खोट ॥८३॥

[1] क्या समझा क्या हो गया रे ! निकला हीरा काच ।
रीरी आवृत स्वर्ण झोल से लोकोक्ति निकली साच ॥
पाप घट फूट गया ।
बुना बुनाया तार गुरुजी का टूट गया ॥८४॥

इस प्रभुवर के वेश मे रे ! करते ऐसे काम ।
कितना होता है अहो रे ! धर्म-सघ बदनाम ॥
भरोसा ऊठ गया ॥८५॥

छोडी सयम साधना रे, छोडा उचिताचार ।
इस धन की धुन मे धसे रे लाख लाख धिक्कार ॥
भाग्य क्यो रूठ गया ?८६॥

'देव' नही 'देवातल' भी ना पीतल भी है नष्ट ।
कहा आर्य-पद तीसरा ? ये पचम पद से भ्रष्ट ।
साधुपन छूट गया ॥८७॥

आत्मिक धन को खो किया रे हा ! इस धन से प्यार ।
छोड स्वर्ण, वसु व्यर्थ उठाया यह लोहे का भार ।
जीवन-करण खूट गया ॥८८॥

कहते थे धन, धान्य, परिग्रह सब पापो का मूल ।
अरे ! आर्य ! उन उपदेशो की हाय ! उडाई धूल ।
कथन सब झूठ गया ॥८९॥

सहनाणी

उद्वेग बढा सबके मन मे नामाकित देखे आभूषण ।
बच्चो से छीन लिए कैसे ? दूषण मे निकला महादूषण ।
आह्वान करो मा बापो को विक्षिप्त हृदय से पागलवत् ।
पहचानो गहनें एक एक बच्चो का पता लगे साम्प्रत ॥९०॥

---

१. लय—कीडी चाली सासरे रे

राधेश्याम

ज्यो ज्यो देख रहे आभूषरण, बढता जाता दु ख का भार ।
अरे ! बलय ये अप के, यह तो पृथ्वीकाय का नवसरहार ।
ये कुण्डल हैं वायुकाय के, अगूठी मेरे त्रस की ।
ये तो वनस्पति के गहने, यह दुलडी है तेजस की ॥९१॥

दोहा

क्लान्त हृदय उद्भ्रान्त हो, बोले वदन विषन्न ।
क्यो कुरेदते हो मही, निश्चल मना निषण्ण ॥९२॥

[1] कहा वे बच्चे हैं ? उत्तर देते हो क्यो न ?
कहा वे बच्चे है ? क्यो साध रहे हो मौन ?

बिना बालको के सभी, गहने ये लगते शल्य ।
अग अग मे आ रहा है, हम सब के शैथिल्य ॥९३॥

ये लो गहने आप लो, पर कहदो सच्ची बात ।
परिकर मे जिनके बिना, है घिरी अन्धेरी रात ॥९४॥

त्रास न देगे आपको, रख साधु-वेश की लाज ।
पर उन सबका क्या किया ? यह बतलादो महाराज ! ९५॥

अरे ! होलिया उठ रही, है जली हृदय मे आग ।
सूने है उनके बिना, हम सबके जीवन-बाग ॥९६॥

(यदि) मार दिए हो तो करे, शव ला उनका सस्कार ।
क्षत विक्षत हो तो करें, उनका समुचित उपचार ॥९७॥

सहनाणी

इतने मे वे पद-चिन्हो के ज्ञाता जन नव मिल आते है ।
उनके चेहरे गद्-गद् स्वर से यो करुण कहानी गाते है ॥

१ लय—बगीची निम्बुआ की

वे खोज वहा तक मिलते हैं, ये खोज यहा तक आते हैं।
बच्चो का कुछ भी पता नही, हम भेद समझ ना पाते है ॥९८॥

उस ऊचे टिब्बे के नीचे तक तो उनके पद-चिन्ह मिले।
वहा से आगे कुछ पता नही, यह देख हमारे हृदय हिले ॥
वहा से तिरछी उत्पथगामी पद-पक्ति यहा तक आती है।
वे खोज स्पष्ट है गुरुवर के हम सब की मति चकराती है ॥९९॥

दोहा

यह सुनते ही मच गया, सब मे हाहाकार।
तत्क्षण मानस पर चली, है मानो तलवार ॥१००॥

शोकाकुल व्याकुल हृदय, हुआ सभी सत्रस्त।
पलको मे पानी भरा. सारे अस्त-व्यस्त ॥१०१॥

[1] अरे ! कहा है प्राणो के आधार वे।
फूट-फूटकर यो रोती है नारिया ॥
हाय ! कहा जीवन-तत्री के तार वे,
रोती रोती मूर्छित होती नारिया ॥१०२॥

नयनानन्दन पुत्र कहूगी मैं किसे ?
हा हा ! आखो से ओझिल वह हो गया ॥
सदा सुरक्षित रखा करती मै जिसे।
वह अमूल्य हीरा मेरा कहा खो गया ॥१०३॥

छाती-माथे कूट कूट कर रो रही।
सारा वातावरण रुदनमय बन रहा ॥
दशो दिशाए शोकाकुल सी हो रही।
वर्णो मे वह वृत्त नही जाता कहा ॥१०४॥

---

१ लय—प्रभुवर आवी वेला क्या रे

इसी तरह से पुरुष कर रहे शोक है।
जैसे मीन तडफती हो पानी बिना ॥
दीपक का मानो बुझता आलोक है।
शान्त कर रहे है कुछ धृतिधर वेदना ॥१०५॥

सहनाणी

मानो आकर हृदयाचल पर खरतर सुरपति के कुलिश पडे।
टिक नही सके कुछ तरुण वीर गिर पडे मही पर खडे-खडे ॥
आहे भर-भर कर रोते है, फटती जाती हा! दृढ छाती।
वह द्रावक दृश्य महाभीषण पूरा न लेखिनी लिख पाती ॥१०६॥

सोरठा

कहते बुरा भला, गुरुजी को रो रो सभी।
नीचे किए गला, बैठे है वे मूद दृग ॥१०७॥

[1] ये गुरु जी तो बडे ही कठोर निकले।
कुछ समझा था और कुछ और निकले ॥
ये गहनो के क्या बच्चो के भी चोर निकले ॥

बोलने मे ये कैसे मिष्टभाषी अहो ?
मैले मन के ये ऐसे किसने जाना कहा ?
ये सापो को निगलने वाले मोर निकले ॥१०८॥

स्वाग ऊपर से मुनि का दिखाते है।
ध्यान बगुले ज्यो रहते ये ध्याते है ॥
कितने अपने आचार मे कमजोर निकले ॥१०९॥

हमने इनका कभी न अपराध था किया।
क्या जाने किस भवान्तर का बदला लिया ?
कैसे सज्ञा - विहीन पापी घोर निकले ॥११०॥

---

१ लय—अणुव्रत का ऐलान

पूछने पर ये अक्षर भी बोलते नही।
देखो ध्यानी बने है आखे खोलते नही ॥
ऊपर मानव आकार अन्दर ढोर निकले ॥१११॥

दोहा

सभव है कुछ और हो, पहले करो तलास।
यो आकर कहने लगे, दाने बूढे पास ॥१ २॥

दौड धूप करके हुए, सारे ही हैरान।
गुरुजी का ही काम यह, हुआ स्पष्ट अनुमान ॥११३॥

साधुवेश मे हा ! अकृत्य यह लाख-लाख धिक्कार।
शुद्धाचार विचार आपके गए समुद्रो पार ॥

अमृत से हा मृत्यु हो गई, दिनकर से अन्धेर।
शशि से बरसी आग, सलिल से हुआ राख का ढेर ॥
खाने लगी बाड भी फल, लोकोक्ति बनी साकार ॥११४॥

सीमा तोड सिन्धु अवनी पर करता है उत्पात।
माता भी डायन बन करती है बच्चो की घात ॥
जीवन - दायक जीवन द्वारा जीवन का संहार ॥११५॥

चलने मे सहयोग न करती है धर्मास्तिकाय।
स्थिर रहने मे अधर्मास्ति भी देतो न सहाय ॥
आकाशास्तिकाय से मिलना बध हुआ आधार ॥११६॥

काल वर्तना गुण से च्युत है, पुद्गल त्यक्त स्वभाव।
चेतन जड बनने को उद्यत हो गया भाव अभाव ॥
ऐसी विषम स्थिति मे कैसे टिक सकता ससार ॥११७॥

---

१ लय—लो लाखो अभिनन्दन

जैन जगत के उज्जवल तारे लाखो के श्रद्धेय।
हाय ! आपके द्वारा कैसा कृत्य हुआ यह हेय ॥
नाविक डुबो रहा जब नैया कौन लगाए पार ॥११८॥

[1] धिग्-धिग् ! मुनि होकर के यह क्या कर डाला।
छि छि ! हम सब का मुह कर दिया काला ॥

शिष्यो ने जिस भान्ति शान्त मन अपना जन्म सुधारा।
जी ! अच्छा होता साथ उन्ही के कर लेते सथारा ॥११९॥

इस हिसक जीवन से तो था भला आपका मरना।
जी ! साधुवेश क्यो रक्खा यदि था निम्न कृत्य ही करना ॥१२०॥

प्यारे-प्यारे उन बच्चो की भारी व्यथा सताती।
जी ! इधर हुआ शासन लाछित हा ! फटती जाती छाती ॥१२१॥

हुई लज्जिता यह मुहपत्ति, रजोहरण शरमाया।
जी ! इस धोली चदर पर क्यो यह काला दाग लगाया ?१२२॥

हाय ! आपने दूध मुहो की, की नृशस जो हिसा।
जी ! इससे मुनि-समाज की होगी कितनी निन्दा-खिसा ॥१२३॥

बच्चो से भी बढकर के है चिन्ता जिन-शासन की।
जी ! सन्तो पर कैसे टिक पाएगी श्रद्धा जन-जन की ॥१२४॥

यो बच्चो की हत्या करते जाता काप कसाई।
जी ! गहनो के लोभी हो कितने आप बने अन्याई ?१२५॥

हाय ! कौनसे पूर्वार्जित पापो के ये फल पाए।
जी ! बच्चो की हत्या करवाने हम क्यो यहा पर आए ?१२६॥

---

१ लय—निरलज्ज नरेश्वर

[1] आता पतन चरम सीमा पर तब चाहता उत्थान।
प्राय मानव मानस का यह सरल मनोविज्ञान॥
होता तम के बाद प्रकाश प्रकृति को भूल न जाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे॥१२७॥

है सम्भावित अत्युत्कर्षण मे होना अपकर्ष।
अत्यपकर्षण मे ही होता निहित सदा उत्कर्ष॥
हो मध्यस्थ अपने पथ पर हम चरण बढाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे॥
हम डट जाएगे, नही किंचित घबराएगे।
समय पर कडे परीक्षण मे भी हम साहस दिखाएगे॥१२

१ लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

४

सहनाणी

घुटनो मे डाल रखी गरदन, थर-थर काप रहा है तन।
गुरुजी के दोनो बन्ध नयन, करते है मन ही मन चिन्तन ॥
देखे कुछ ऊची दृष्टि उठा यह साहस तक कैसे होता?
अपने अकृत्य पर रह-रह कर उनका अन्तस्थल है रोता ॥१॥

[1] फट जाए यदि धरा समा मैं जाऊ।
नभ टूट पडे तो मै उसमे छिप जाऊ ॥

रस्सी भी पास न यदि गल फासी खाऊ।
बतलाओ हे भगवान कहा अब जाऊ?
क्या करू स्वय की कैसे लाज बचाऊ ॥२॥

हा! मैने श्रीजिनधर्म किसलिए छोडा?
सयम से क्यो जीवन का नाता तोडा ॥
जिसका प्रतिफल साक्षात आज मै पाऊ ॥३॥

यदि सयम मे रहता तो क्या थी हानि?
वन अज्ञानी क्यो कर वैठा नादानी ॥
यह आत्म-कहानी मेरी किसे सुनाऊ ॥४॥

सयम छोडा पर वच्चो को क्यो मारा।
आगे-पीछे मैने कुछ नही विचारा ॥
टुकडे-टुकडे होता मन, किसे दिखाऊ? ५॥

---

१ लावणी

देखो रोते है फूट-फूट कर सारे।
मैने कितनो के कोमल हृदय विदारे ॥
लज्जा से बोझिल कैसे आख उठाऊ ॥६॥

की आत्म-धर्म ने मेरी सदा भलाई।
ज्यो ही छोडा यह विकट परिस्थिति आई ॥
हो पथ-भ्रष्ट अब रो-रो कर पछताऊ ॥७॥

आस्तिकता ने तो ऊचा मुझे उठाया।
आई नास्तिकता, ज्यो ही मुझे गिराया ॥
इससे बढकर क्या नरक ? हाय ! अकुलाऊँ ॥८॥

लाखो के द्वारा था मै पूजा जाता।
निर्भय हो मीठी कडवी सीख सुनाता ॥
हा ! शब्द बोलते भी अब मै सकुचाऊ ॥९॥

मै था कितना विश्वास-पात्र जन-जन का।
ज्यो ही आया आकर्षण मन मे धन का ॥
हा ! अब सबकी दुत्कार ठोकरे खाऊ ॥१०॥

"चत्तारी-शरण" बिना न और सहारा।
होगा उनके आश्रय से ही छुटकारा ॥
हो एक मना अब मैं उनको ही ध्याऊ ॥११॥

[1] मेरा उजडा ससार बसादो, नैया पार लगा दो।
डगमग डगमग करती मझधार है, हो मेरे लोकोत्तम शरणे चार है ॥

हे ! अरिहन्त देव ! तुमने कितने पतितो को तारा।
डूब रहे थे बीच भवर मे उनको पार उतारा ॥
प्रभुवर ! है अब आधार तुम्हारा, कोई न और सहारा।
अन्तर मन की यह करुण पुकार है ॥१२॥

---

१ लय—झूठी-झूठी दुनिया की

सर्वदर्शी, सर्वज्ञ सिद्ध प्रभु सब कुछ जान रहे हो ।
वहा बैठे मेरे मन की स्थितिया पहचान रहे हो ॥
भगवन् ! अपनी वह प्रभा दिखा दो, भूले को मार्ग लगा दो ।
यह पापी आया तेरे द्वार है ॥१३॥

सन्तो काम तुम्हारा प्रतिपल स्व-पर शुद्धि है करना ।
भ्रम अन्धेर मिटा जन-जन मे भव्य-भावना भरना ॥
हा हा ! लुटता है जीवन मेरा, छाया है घोर अन्धेरा ।
कोई भी और नही आधार है ॥१४॥

आत्म-धर्म तू नित्य रहा, सब के सुख दुख मे साथी ।
तेल दीप के सदा बीच मे रहती है ज्यो बाती ॥
करदे मेरी आत्मा को पावन, भर दे इस शव मे जीवन ।
तेरे से ही सभव उद्धार है ॥१५॥

मे हू अधमाधम, अन्याई, पापी, दुष्ट, लुटेरा ।
हत्यारा, निर्दय, नृशस, निघृर्ण, निकृष्ट मन मेरा ॥
हा हा ! हीरे सा सयम हार, छ छ बच्चो को मारा ।
कैसे ये मेरे काले कार है ? १६॥

हा ! मैने अपने हाथो से अपनी बाजी हारी ।
"पव्वज्जामि शरण चत्तारी" जीवन के सहचारी ॥
मेरी बिगडी यह बात बनाओ, अपना कहकर अपनाओ ।
ये तन, मन, जीवन सब तैयार है ॥१७॥

राधेश्याम

मत्थेण वदामि आर्यप्रवर ! कानो मे यह आई आवाज ।
आखे खोलो, झाको कृपया, मुखसाता तो है महाराज ?
कोई ध्यान नही इस पर भी (नो) आई ध्वनि उच्च स्वर से ।
ऐसा हुआ प्रतीत, चरण छूता कोई कोमल कर से ॥१८॥

दोहा

ये तो शब्द विनोद के से होते है ज्ञात ।
वह कैसे आया यहा, है विस्मय की बात ॥१९॥

सहनाणी

गुरुवर अब तो पलके खोलो, है सन्मुख भक्त पुकार रहा ।
अव ध्यान पार कर दर्शन दो, कर मेरे पर शुभ दृष्टि महा ॥
क्षण देखो नयन उठाकर के, कृपया फिर कर लेना चिन्तन ।
पहिले अभिलापा पूर्ण करो, जिससे पुलकित हो जाए मन ॥२०॥

[1] थर-थर कापते गुरुजी, पलके खोल रहे जी ।
पलके खोल रहे जी, धीरे बोल रहे जी ॥
मन मे डोल रहे जी ॥

भारी लज्जा से आक्रान्त, भीतर ही भीतर उद्भ्रान्त ।
अन्तर मन था अशान्त ॥२१॥

ज्यो ही खोली धीरे आख, अद्भुत दृश्य रहे झाक ।
कुछ भी सके नही आक ॥२२॥

उतरी सारी मन की छाक, चारो ओर रहे ताक ।
वे तो रह गए अवाक ॥२३॥

गीतक छन्द

है कहा वह सघ श्रावक श्राविकाए है कहा ?
अरे ! बच्चो के विरह मे विलखते थे जो यहा ?
हन्त ! वे सारे कहा पर गए एक निमेप मे ।
हाय ! उनका हृदय कितना डूवता था क्लेश मे ॥२४॥

---

१. लय—पीड वखिए दी

राधेश्याम

रे ! क्या कोई मुझे आ रहा था तन्द्रा मे यह जजाल ।
या था कोई इन्द्रजाल का बिछा हुआ मेरे पर जाल ।।
या हृत्-सागर मे उठते थे कोरे व्यर्थ काल्पनिक ज्वार ।
या कुछ सत्य निहित था उसमे बार-बार कर रहे पुकार ।।२५।।

अरे ! हुआ क्या ? अरे ! हुआ क्या ? होता है आश्चर्य महान ।
कानो से ध्वनि टकराई गुरुवर दे आप इधर भी ध्यान ।।
प्रभो ! खडा हू मै कब का वैनेय[1] आपका बाल विनोद ।
मेरी ओर निहारे कृपया स्वीकृत कर मेरा अनुरोध ।।२६।।

दोहा

देखा साम्प्रत सामने, प्राजल खडा विनोद ।
सहसा उमडा हृदय मे, उनके परम प्रमोद ।।२७।।

[2] कहा से तू आया ? प्यारे शिष्य विनोद ।
अरे यह क्या माया ? प्यारे शिष्य विनोद ।।
क्या जाने कहा गया तू ? मेरे को भूल गया तू ।
हा ! मैने उत्पथ अपनाया ।।२८।।

था कितनी बार पुकारा, मै बुला-बुलाकर हारा ।
तेरा तो पता नही पाया ।।२९।।

आ नास्तिकता ने घेरा, छाया भीषण अन्धेरा ।
मैने सयम-पथ ठुकराया ।।३०।।

भौतिक सुख विषय विलासी, होकर धन का अभिलाषी ।
यह हाय ! बुढापा बिगडाया ।।३१।।

---

१ शिष्य

२ लय—दीपावाले नन्द

मैने कुछ भी न विचारा, छव-छव बच्चो को मारा।
फिर भी न हुई कम्पित काया ॥३२॥

इनको कैसे समझाऊ, वे बच्चे कहा से लाऊ।
परलोक जिन्हे है पहुचाया ॥३३॥

कैसे पावनता पाऊ, कैसे अब मुह दिखलाऊ।
हा ! जीवन ने पलटा खाया ॥३४॥

दोहा

धैर्य धरो गुरुदेव अब, करो हृदय को शान्त।
वरो साधना का सुपथ, बनो न यो उद्भ्रान्त ॥३५॥

जो भी यह घटना घटी, है सब मेरे काम।
पूरा व्यतिकर अब सुनो, होकर स्थिर परिणाम ॥३६॥

अन्त समय आराधना, कर अनशन अविकार।
यह मानव-तन छोडकर, पाया सुर अवतार ॥३७॥

'स्वर्ग कहो क्या है सही ?' तो वहा का इतिवृत्त।
शिष्य बताओ तो बने, समाधिस्थ यह चित्त ॥३८॥

राधेश्याम

देव-दूष्य आवृत शय्या मे हुआ आर्यवर मै उत्पन्न।
था उल्लास छा रहा सारे देव देविया परम प्रसन्न ॥
मुहूर्तान्तिर मे पाचो पर्याप्ति से पूर्ण हुआ पर्याप्त।
रम्य रूप वैक्रिय शरीर पौद्गलिक सिद्धिया भी सप्राप्त ॥३९॥

सहनाणी

आलोकित है अम्बर धरणी, सरणी-सरणी मे खुला स्रोत।
नन्दन-वन निकट निकुजो की, सुखमय सौरभ से ओत-प्रोत ॥

ऊचे ऊचे वे देवयान, मगल कलशो से है शोभित ।
हो जाता वहा सहसा प्रसन्न मन कितना भी हो विक्षोभित ।।४०।।

उड रही योजनो तक ऊची उनकी वे दिव्य पताकाए ।
है वचन अगोचर भव्य छटा शब्दो से कही नही जाए ।।
नाना रत्नार्चित सुर-विमान मणियो की आभा से ज्योतित ।
जगमग जगमग जगमगा रहे करते चारो दिग् उद्योतित ।।४१।।

हृदयाह्लादक सुर-वाद्यो की झकृत रहती झकार वहा ।
मनमोहक मृदु-स्वर लहरी की उठती रहती धुकार जहा ।।
करबद्ध अनेको आभियोग-सुर रहते चारो ओर खडे ।
जय-जय नन्दा, जय-जय भद्दा ध्वनिया, उठती जहा दृष्टि पडे ।।४२।।

है प्राप्त सभी सुख सुविधाए पचेन्द्रिय का पूरा विलास ।
सब इष्ट कान्त पुद्गल मनोज्ञ सुरभित नितान्त उच्छ्वास श्वास ।।
अति सुन्दरतम शृगार सझे उन्मुक्त अप्सराए सारी ।
सगीत परायण, नृत्य मगन, आतोद्योद्यत मानस-हारी ।।४३।।

ज्यो ही मैने पलके खोली एक स्वर जयजयकार हुआ ।
थे पुलक रहे सबके चेहरे अन्तर मन हर्ष अपार हुआ ।।
दिखलाती अभिनव हाव-भाव उत्कठित देव वयस्याए ।
वे पूछ रही थी सब मिलकर मेरे से निम्न समस्याए ।।४४।।

'कि किच्चा' ? स्वामिन जीवन मे बोलो क्या क्या सत्कृत्य किया ?
'कि दच्चा' धर्म-दान देकर बतलाओ कितना लाभ लिया ?
'किं भोच्चा' आन्त-प्रान्त नीरस रुखकर समभाव आहार किया ?
'किं समायरत्ता' अनशन तप कितना कर सुर अवतार लिया ?४५।।

दोहा

यह सुनते ही मैं लगा, करने चिन्तन सद्य ।
किए आचरण कौन से मैंने ये अनवद्य ।।४६।।

जिनके प्रबल प्रभाव से, विभुता मिली महान ।
था भवप्रत्यय पास मे, मेरे अवधिज्ञान ॥४७॥

जिसके द्वारा पूर्वभव-स्मृतिया सब साकार ।
नर-जीवन के हो गए, जागृत सब सस्कार ॥४८॥

[1] सारा जान लिया वृत्तान्त ।
आर्य ! आपके ही प्रताप से मिला देव-भव कान्त ॥

जीवन के सस्कार बताए,
मुक्त कठ से गुरु-गुण गाए ।
सुन सबके मानस विकसाए,
मानो हर्ष मेघ मडराए ॥
बोली सब सानन्द भाग्य बल पाए स्वामी शान्त ॥४९॥

आने को उद्यत मेरा मन,
आर्यदेव के पाने दर्शन ।
भूला नही स्वयकृत मै प्रण,
रोक लिया उन सबने तत्क्षण ॥
नाटक एक देखते जाओ होकर के अब श्रान्त ॥५०॥

यो ही आप चले जाएगे,
तो वहा पर क्या बतलाएगे ?
गुरुजी को क्या दिखलाएगे,
क्या शय्या-गौरव गाएगे ?
उनके आकर्षक प्रश्नो से बना स्वय सभ्रान्त ॥५१॥

---

१. लय—अरे ! ओ भारत के मजदूर

सोरठा

उत्कट आग्रह मन, नाट्य लगा मै देखने ।
इतने मे श्रीमान ने आसन कम्पित किया ।।५२।।

ज्योही कुछ कुछ रग, जमने लगा सुनाट्य का ।
हुआ रग मे भग, उसी समय वहा से चला ।।५३।।

दिया शीघ्र उपयोग,[1] गुरुवर श्रद्धाच्युत हुए।
छोड चले है योग,[2] रात्रि के बारह बजे ।।५४।।

सहनाणी

देवानुप्रिय ! जब हुई तुम्हे, अवगत मेरी अघटित बाते ।
फिर इतना काल व्यतीत किया तुमने वहाँ से आते-आते ।।
क्या होता यदि थोडे से भी पहले तुम यहा पर आ जाते ।
सम्यग्-दर्शन, चारित्र, ज्ञान मेरे रत्नत्रय क्यो जाते ?५५।।

राधेश्याम

एक नाट्य मे कैसे इतना समय हो गया अरे ! व्यतीत ।
लुब्ध हुआ तू स्वर्ग-सुखो मे ऐसा होता स्पष्ट प्रतीत ।।
आर्यप्रवर बतलाए, पथ मे नाटक देखा कितनी देर ?
वह तो था समाप्ति पर, दो क्षण रुके वहा पर मेरे पैर ।।५६।।

सहनाणी

क्या कहते हैं गुरुवर ! दो क्षण ? रवि उत्तर से दक्षिण आया ।
पावष तो पूरा बीत गया गर्मी का स्थान शीत पाया ।।
महाराज ! वहा तो युग के युग यो नाटक मे कट जाते हैं ।
वह स्मरण कीजिए किवदन्ति, सुख के दिन जल्दी जाते हैं ।।५७।।

---

१ ध्यानपूर्वक
२ साधुत्व

दोहा

हा ! हा ! मेरे हाथ से, हुआ महा अन्याय ।
प्रिय ! विनोद ! तू ही बता, अब क्या करू उपाय ॥५८॥

[1] थी सभी मेरी ही माया, थी सभी मेरी ही माया ॥
देव-शक्ति का एक नमूना, मैने दिखलाया ॥

ज्यो ही आया निकट, आर्यवर ! मन मे उठे विचार ।
करू परीक्षा हो सकती, यह नैया कैसे पार ?
जाल यह मैंने फैलाया ॥५९॥

सयम, दया और लज्जा, ये तीनो तत्त्व विशेष ।
हो जाता उत्थान एक भी, रह जाए यदि शेष ॥
क्लेश से मुक्त बने काया ॥६०॥

नाट्य रचा, देखू कहा तक मन मे सयम का स्थान ।
दत्त चित्त हो गए देखने मे भूले सब भान ॥
रही ना सयम की छाया ॥६१॥

वे गुरुवर ! बच्चे सारे थे, मेरे ही कृतरूप ।
चाहता था अन्वेषण करना अन्तर-दया-स्वरूप ॥
नही हा ! उसको भी पाया ॥६२॥

सोचा मैने अब लज्जा की शेप परीक्षा एक ।
वह भी हो तो इनके मन मे जागृत करू विवेक ॥
सघ रच नया रंग लाया ॥६३॥

दोहा

व्यग्र बने ना आर्यवर ! अभी हाथ मे डोर ।
आए सयम की शरण, कर अनुनय पर गोर ॥६४॥

---

१ लय—तावडा धीमो पडज्या रे

[1] गुरुवर ! साधुपन ही जीवन का सच्चा सार है।
इसीसे नैया पार है, इसीसे आत्मोद्धार है ।।

अवितथ है सारे आगम, सयम का सफल परिश्रम।
तत्क्षण हो आत्म-शक्ति यह फल साकार है ।।६५।।

सच्चे नरको के दुख है, सच्चे स्वर्गो के सुख है।
कर्मो के कारण होता पुनरवतार है ।।६६।।

यह कोई नही प्रलोभन, स्थिति का है सही निरूपण।
कर्मावृत आत्मा का यह तन आधार है ।।६७।।

आत्मा का स्वत्व अरूपी, कर्माश्रय से है रूपी।
इसकी ससरण-भूमिका ही ससार है ।।६८।।

पुण्यो, पापो के प्रतिफल, मिलते है सुख-दुख अविरल।
आत्मा का यो कर्तृत्व स्वत स्वीकार है ।।६९।।

आश्रव है वन्ध निबन्धन, सवर से कर्म निरूधन।
तप सचित कर्मों का सीधा प्रतिकार है ।।७०।।

निश्चित जब यह ससृति है, कल्पित क्यो लोक स्थिति है।
षड् द्रव्यात्मक चवदह रज्जू विस्तार है ।।७१।।

गति-स्थित्यै सदा सहायी, धर्माधर्मास्ति कार्यी।
चलता रहता चेतन जड का व्यवहार है ।।७२।।

देता आकाश आश्रय, पुद्गल है गलन-मिलनमय।
पुद्गल के सिवा न कोई का आकार है ।।७३।।

---

१ लय—यह है जगने की वेला

जिन-वचनो पर हो निश्चल, पल पल हो श्रद्धा अविचल।
'तुलसी' यह आत्म-शुद्धि का मगल द्वार है ॥७४॥

दोहा

प्राय पश्चिम रात को, करवाते स्वाध्याय ॥
कैसे भूले आज वह, सूत्रकृतागाध्याय ॥७५॥

गजल

पुन सस्मरण मे लाओ, आर्य वे सूक्तिया कैसी ?
बनो ज्ञानी, विमल ध्यानी, सत्य तत्त्वो के अन्वेषी ?

[१] नत्थि लोए अलोए वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि लोए अलोए वा करो सद्धारणा ऐसी ॥७६॥

नत्थि जीवा अजीवा वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि जीवा अजीवा वा करो सद्धारणा ऐसी ॥७७॥

नत्थि धम्मे अधम्मे वा करो मत धारणा ऐसी ॥
अत्थि धम्मे अधम्मे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥७८॥

नत्थि बन्धे व मोक्खे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि बन्धे व मोक्खे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥७९॥

नत्थि पुण्ये व पावे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि पुण्ये व पावे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८०॥

---

१ ऐसी धारणा मत करो कि —
लोक-अलोक नही है,
जीव-अजीव नही है,
धर्म-अधर्म नही है,
बन्ध व मोक्ष नही है,
पुण्य व पाप नही है,

ऐसी धारणा करो कि —
लोक-अलोक है,
जीव-अजीव है,
धर्म-अधर्म है,
बन्ध व मोक्ष है,
पुण्य व पाप है,

(शेष पृष्ठ ७५ पर)

नत्थि आसवे सवरे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि आसवे सवरे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८१॥

नत्थि वेयणा निज्जरा वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि वेयणा निज्जरा वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८२॥

नत्थि किरिया अकिरिया वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि किरिया अकिरिया वा करो सद्धारणा ऐमी ॥८३॥

नत्थि कोहे व माणे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि कोहे व माणे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८४॥

नत्थि माया व लोभे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि माया व लोभे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८५॥

नत्थि पेज्जेव दोषे वा करो मत धारणा ऐसी।
अत्थि पेज्जेव दोपे वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८६॥

नत्थि चाउरत ससारे करो मत धारणा ऐमी।
अत्थि चाउरत ससारे करो सद्धारणा ऐसी ॥८७॥

नत्थि सिद्धा असिद्धा वा करो मत धारणा ऐमी।
अत्थि सिद्धा असिद्धा वा करो सद्धारणा ऐसी ॥८८॥

(पृष्ठ ७४ का शेप)

आस्रव व सवर नही है,	आस्रव व सवर है,
वेदना (कर्म-भोग) व निर्जरा नही है	कर्म का भोग व निर्जरा है
क्रोध व मान नही है	क्रोध व मान है,
माया व लोभ नही है,	माया व लोभ है,
राग व द्वेप नही है,	राग व द्वेप है,
चार गति रूप ससार नही है,	चार गति रूप ससार है,
सिद्ध व असिद्ध नही है,	सिद्ध व असिद्ध है,

(शेप पृष्ठ ७६ पर)

नत्थि सिद्धि नियठाण करो मत धारणा ऐसी ।
अत्थि सिद्धि नियठाण करो मद्धारणा ऐसी ॥८९॥

सहनाणो

शका, काक्षा, विचिकित्सा से हो परे शुद्ध सम्यक्त्व वरो ।
क्या अधिक कहू मै आर्य ! स्वय के मूल स्थान को ग्रहण करो ॥
हो भावितात्म तप सयम से तारो जगतीतल स्वय तरो ।
घट-घट का भ्रम तम दूर हरो, अब दिव्य ज्योति बनकर निखरो ॥९०॥

दोहा

गद्-गद् स्वर मे आर्यवर ! झर नयनो से नीर ।
होकर के अति द्रवित दिल, बोले गिरा गभीर ॥९१॥

शिष्य निभाया पूर्णत, स्वय स्वीय कर्तव्य ।
मेरे पर उपकार जो, भव-भव मे स्मर्तव्य ॥९२॥

उठा लिया ऊपर मुझे, देकर सद्-आधार ।
भव भव मे भूलूँ नही, यह विनोद-उपकार ॥९३॥

जीवन मे जागृत किए, श्रद्धा-पूर्ण विचार ।
भव भव मे भूलूँ नही, यह विनोद-उपकार ॥९४॥

मेरे कण कण मे भरे, सयम के सस्कार ।
भव भव मे भूलू नही, यह विनोद-विचार ॥९५॥

मानो मृत शव मे किया, नव जीवन सचार ।
भव भव मे भूलू नही, यह विनोद-उपकार ॥९६॥

पुन बसाया है अरे ! यह उजडा ससार ।
भव भव मै भूलू नही, यह विनोद-विचार ॥९७॥

(पृष्ठ ७५ का शेष)

मोक्ष गतो का स्थान नही है । मोक्ष गतो का स्थान है ।

किन शब्दो मे प्रकट मै, कर पाऊ आभार ।
भव-भव मै भूलू नही यह विनोद-विचार ॥६८॥

सहनाणी

बद्धाञ्जलि बोला विनोद, यह मैने क्या उपकार किया ।
प्रस्तुत चरणो मे किया उसे जो तत्त्व आपने मुझे दिया ॥
अगणित अनन्त उपकार अहो ! गुरुओ का रहता शिष्यो पर ।
कैसे प्रत्यावर्तन उसका हो सकता भव-भव मे गुरुवर ॥६६॥

[1] शिष्यो पर रहता सद्गुरु का है उपकार अनन्त रे ।
कण-कण ले सागर के जल का कौन पा सके अन्त रे ॥

मिट्टी के ढेले को जिसने श्रम से घडा बनाया ।
कुम्भकार का ऋण बोलो कैसे जा सके चुकाया ?
शिष्यो की वही दशा है सचमुच सोचे यदि आद्यन्त रे ॥१००॥

उठा गली से कोरा पत्थर कलाकार घर लाया ।
सुन्दर प्रतिमा बना उसे लाखो का पूज्य बनाया ॥
वैसे ही शिष्यो पर सद्गुरुवर करते श्रम अत्यन्त रे ॥१०१॥

पडा कोयलो की खानो से ककर जौहरी लाता ।
चढा सान पर चमका कर क्रोडो का मूल्य बढाता ॥
वैसे ही चमकाते शिष्यो को गुरुवर गरिमावन्त रे ॥१०२॥

जो भवाब्धि मे भटक रहा था देकर उसे सहारा ।
ले पतवार हाथ मे गुरु-नैया को पार उतारा ॥
करते है मुक्त-कण्ठ से वर्णन 'तुलसी' स्वय भदन्त रे ॥१०३॥

---

१ लय—कोटि-कोटि कण्ठो ने गाए

गीतकछन्द

समय पर आया नही मै क्षमाप्रार्थी हू अत ।
बालको की भूल होती क्षम्य गुरुवर ! सर्वत ॥
दबा जाता हू प्रभो ! मै आपके उपकार से ।
कर रहे हैं और बोझिल आप इस आभार से ॥१०४॥

हू, रहूगा ऋणी मैं तो आर्यवर का सर्वदा ।
आपके ही यत्न से यह मिली सारी सम्पदा ।
जो कहा, गुरुदेव ने वह है असीम महानता ।
विनय है, अब शीघ्र सत्पथ वरे आत्मोत्थान का ॥१०५॥

[1] प्यारे ! विनोद ! तू ने उपकार है चुकाया ।
भूले हुए पथिक को सन्मार्ग पर लगाया ॥

आखो के आगे आया, घन घोर तम अमा का ।
ले ज्ञान दीप तू ने सब ध्वान्त है मिटाया ॥१०६॥

जड से उखड गया जो अस्तित्व भी रहा ना ।
सम्यक्त्व-वृक्ष पावन तू ने पुन उगाया ॥१०७॥

उपवन उजड गया जो अब नीर कौन सीचे ।
पुष्पित बनाने सयम का स्रोत है बहाया ॥१०८॥

था निर्वसित हुआ जो रक्षक रहा न कोई ।
सूने सदन को तू ने फिर से अहो ! वसाया ॥१०९॥

राधेश्याम

ऐसे कृत उपकार उतरते है प्रभु-वचनो के अनुसार ।
देवानुप्रिय ! उस उपकृति का प्रत्युपकार किया साकार ॥
उपकारो प्रत्युपकारो का वर्णन मिलता है सर्वांग ।
कैसे उऋण होता देखो जरा उठा आगम स्थानाग ॥११०॥

---

१ लय—इतिहास गा रहा है

गीतकछन्द

माता-पिता का पुत्र पर उपकार अपरम्पार है।
निस्व-सेवक पर महर्धिक का अथग आभार है॥
शिष्य पर गुरु का ततोधिक महाउपकृति भार है।
करो सेवा क्यो न कितनी, किन्तु दुष्प्रतिकार है॥१११॥

सहनाणी

गुरु की उपकृति से उऋणता पाने का एकमात्र साधन।
जब हो केवली पण्णत्ताओ धम्माओ, से विचलित गुरु-मन॥
देकर प्रतिबोध पुन पावन सयम के सत्पथ पर लाए।
सस्थापित कर धार्मिकता मे धम्मायरिय-उऋणता पाए॥११२॥

दोहा

अत चुकाया पूर्णत, तुमने वह उपकार।
प्रत्युत मेरे पर चढा, यह उपकृति का भार॥११३॥

अब मै करता हूं सपदि, सयम-पथ स्वीकार।
मिटा असयम हृदय से, करने आत्म-सुधार॥११४॥

अत्युत्कट परिणाम से, करके भाव विशुद्ध।
सयम मे सस्थित हुए, आर्यप्रवर प्रतिबुद्ध॥११५॥

किया भाव वन्दन सविधि, शिरसा चरण-स्पर्श।
होगा यह युग-युग अमर, गुरुवर का आदर्श॥११६॥

[1] चढते चढते प्रगति शिखर से गिरना है आसान।
पर गिरकर के पुन. सभलना कितना कठिन महान॥
यह आदर्श पूज्य आषाढभूति का युग-युग गाएगे।
हमारा है यह दृढ संकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे॥११७॥

अरे सहज है मोह-कर्म वश हो जाना उद्भ्रान्त।
पर दुष्कर है पुन धर्म मे स्थिर होना चित शान्त॥

---

१. लय—म्हारा सतगुरु करत विहार

इस जीवन-प्रसग से हम पावन शिक्षा अपनाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥११८॥

धन्य-धन्य आषाढभूति का यह जीवन उत्कर्ष।
बढते रहे, सदा हम ले सयम-श्रद्धा-आदर्श ॥
दर्शन, ज्ञान, चरित्र त्रिवेणी से पावनता पाएगे।
हमारा है दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएंगे ॥११९॥

शरच्चन्द्र ज्यो सदा समुज्ज्वल है यह भैक्षव सघ।
निर्मल रीति नीति शासन की सबमे प्रीति अभग ॥
एकाचार, विचार एक अनुशासन अटल निभाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥१२०॥

भिक्षु, भारमल, राय, जीत, श्रीमघवा, माणक, डाल।
परम कृपालु कालु गुरु रक्षक गण गोकुल गोपाल ॥
'तुलसी' उनके पद-चिन्हो पर निर्भय बढते जाएगे।
हमारा है यह दृढ़ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥१२१॥

दो हजार पन्द्रह उत्तरप्रदेश मे वर्षा-वास।
यह औद्योगिक नगर कानपुर बढता धर्म विकास ॥
गण-नन्दन वन की सौरभ से महितल को महकाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥१२२॥

शुक्ल सप्तमी सूर्यवार यह सुखकर आश्विन मास।
अणुव्रत का नवमा अधिवेशन अभिनव हर्षोल्लास ॥
नैतिक आन्दोलन से जन-जन मे नव जागृति लाएगे।
हमारा है यह दृढ सकल्प धर्म-पथ पर डट जाएगे ॥१२३॥

दोहा

सुस्थिर मन सम्यक्त्व मे, उच्छ्त सयम स्रोत।
'तुलसी' शासन मे सदा, रत्नत्रय-उद्योत ॥१२४॥

परिशिष्ट

१

सांकेतिक कथाएं

गर्गाचार्य एक बहुत बडे सघ के प्रमुख थे। वे शास्त्र-विशारद, गरिण-भाव मे स्थित और त्रुटित समाधि को जोडने वाले थे। सयोग की बात थी, उनके सारे ही शिष्य बडे अविनीत, अनुशासनहीन व उच्छृङ्खल थे। गर्गाचार्य उन्हे समय-समय पर हेतु व दृष्टान्तो के द्वारा शिक्षा देते, पर उन सब पर कोई असर नही होता। आचार्य बडे चिन्तित रहते। वे अपने शिष्यो को कुछ आदेश-उपदेश भी देते, किन्तु उन उपदेशो को वे अन्यथा ही ग्रहण करते। बहुधा तो वे गुरु को उत्तर भी दे देते थे या बात को टाल देते थे। यदि कभी वे वस्तु-विशेष लाने के लिए अपने शिष्यो को आदेश देते, तो उनमे से कोई एक उत्तर देता—वह घर वाली मुझे जानती ही नही है, इसलिए मेरे जाने से क्या होगा? दूसरा बोल उठता—मुझे तो वह जान-बूझ कर भी नही देगी। कोई कह देता—अभी तो वह घर ही नही मिलेगी। कोई एक कहता—सदा मैं ही जाता हूँ, आज तो किसी दूसरे को भेजो।

गुरु यदि किसी प्रकार शिष्यो को किसी कार्य के लिए ज्यो-त्यो भेज भी देते, आगे जाकर वे अपलाप करने लगते व इधर-उधर यो ही घूमकर वापिस आ जाते। बलपूर्वक दी गई राजाज्ञा की तरह शिष्य गुरु का आदेश भृकुटी चढाकर सुनते, पर सहर्ष स्वीकार नही करते।

गर्गाचार्य ने अपने शिष्यो को समाधि-सम्पन्न करने का बहुत प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। उन्होंने सब शिष्यो का अपने से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया और दृढता के साथ तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि मे सलग्न हो गए।

२

राजा प्रदेशी और केशी श्रमण

भरत क्षेत्र के साढे पच्चीस आर्य देशो मे केकय देश का आधा प्रदेश आर्यक्षेत्र मे था। इस देश की राजधानी सेयविया (श्वेताम्बिका) नगरी थी। नगर के उत्तर-पूर्व दिशा मे मृगवन नामक एक वहुत सुन्दर उद्यान था। राजा का नाम प्रदेशी था। वह वडा पापी व क्रूर था। जनता पर कर-भार वहुत डालता था। पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, परमात्मा आदि मे उसका तनिक भी विश्वास नही था। छोटे से अपराध पर वहुत वडा दण्ड देता था। वह महान हिसक था। लोहू से उसके हाथ सने रहते थे। उसके प्रधानमन्त्री का नाम चित्त था। वह घोडो का वडा शौकीन था। इसलिए उसे सारथी भी कहा जाता था। वह वडा विचक्षण, सहृदय और राज्य का हित-चिन्तक था। थोडे शब्दो मे प्रजा के लिए राजा जितना क्रूर था, प्रधानमन्त्री उतना ही सोम। राजा के व्यवहार से वहुधा जनता ऊव जाती थी, पर प्रधानमन्त्री के सद्व्यवहार व आश्वासन से उसका दिल जमा रहता। राज्य की घूरी वह प्रधानमन्त्री ही था। चित्त को जनता और राजा दोनो का पूर्ण विश्वास प्राप्त था। रानी का नाम सूरीकान्ता और राजकुमार का नाम सूर्यकान्त था।

कुणाल देश की राजधानी श्रावस्ती थी और वहा का राजा जितशत्रु था। राजा प्रदेशी और जितशत्रु दोनो मित्र थे। एक दिन राजा प्रदेशी ने अपने प्रधानमन्त्री चित्त के साथ, एक वहुमूल्य उपहार राजा जितशत्रु के लिए भेजा। चित्त सारथी वहा पहुचा, राजा को उपहार भेंट किया और कुछ दिन वहा ठहरा। एक दिन चित्त प्रधान ने अपने उच्चतम आवास से वहुत सारी जनता को एक ही दिशा मे जाते देखा। उसके मन मे जिज्ञासा हुई। अपने अनुचरो से चित्त प्रधानमन्त्री ने जाना—भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के वाहक श्री केशी श्रमण अपने ५०० शिष्य-साधुओ के साथ उद्यान मे पधारे हैं। चित्त प्रधानमन्त्री ने उनके दर्शन किए, व्याख्यान सुना, श्रमणोपासक वना और श्रावक के १२ व्रत अगीकार किए। प्रतिदिन धर्म-चर्चा और सत्सग का सुन्दर कार्यक्रम चलता।

वहुत दिनो वाद चित्त सारथी ने राजा जितशत्रु से प्रस्थान के लिए अनुमति मागी। राजा ने अपने मित्र राजा के लिए उसी प्रकार एक वहुमूल्य उपहार प्रधान-मन्त्री को अपनी ओर से भेंट करने के लिए दिया। चित्त सारथी वहा से विदा हुआ

और केशी श्रमण के सान्निध्य मे पहुचा । उसने उनसे श्वेताम्बिका पधारने के लिए अनुरोध किया ।

केशी श्रमण ने विस्मित भाव से उत्तर देते हुए कहा—"प्रधानमन्त्री, एक उद्यान बहुत हरा-भरा है, फल-फूलो से वृक्ष लदे हैं । सरोवर की शोभा वहा अद्वितीय है । प्रत्येक प्राणी एक बार उस उद्यान को देखते ही उसमे प्रवेश करने को लालायित होता है । विहगगण फलो का रस चखने के लिए आकाश मे मडराते है, पर उसी सरस और सघन उद्यान मे एक शिकारी धनुष पर बाण चढाए बैठा है । क्या कोई भी पक्षी उस बगीचे के उन फलो को चखने का असफल प्रयत्न करेगा ?

चित्त प्रधानमन्त्री विनीत स्वर मे बोला—स्थिति तो ऐसी ही है, पर आप पतित-पावन है । आपके सामने अधर्मी और पापात्मा भी धर्मनिष्ठ हो जाते है । आपके तप प्रभाव से शूल भी फूल बन सकते है, भगवन् !

केशी श्रमण ने कहा—जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल होगा ।

केशी श्रमण अपने शिष्य-समुदाय के साथ एक दिन श्वेताम्बिका नगरी के मृगवन उद्यान मे पधार गए । प्रधानमन्त्री चित्त को जब यह सवाद मिला, वह अत्यन्त आनन्दित हुआ । अतिशीघ्र वह उद्यान मे पहुचा, सत्सग किया और निवेदन किया—भगवन् ! देश की जनता बहुत ही उपकृत होगी, यदि आप परम-अधार्मिक राजा को प्रबुद्ध कर दे ।

केशी श्रमण—चित्त, यह तब तक कैसे सम्भव है, जब तक कि वह इस द्वार पर भी न पहुचे ।

चित्त—आपके अनुग्रह से यह सब कुछ होगा । यह तो मेरा काम है प्रभो !

केशी श्रमण—हम अपने काम मे पूर्णत सजग है ।

चित्त—प्रभो ! आपके अनुग्रह से मैं कृतकृत्य हू ।

★ ★ ★

राजा को घोडो की सवारी का बडा शौक था । नए घोडे आए हुए थे । प्रधान मन्त्री ने राजा से अनुनय किया—महाराज, घोडे बहुत अच्छे है, पर जब तक आप उनकी परीक्षा न ले ले, तब तक घुडसाल मे उनको स्थान कैसे दिया जा सकता है ? राजा ने कहा—मैं तो आज ही सावकाश हू । चलो, अभी परीक्षा कर लेते है । प्रधानमन्त्री चित्त सारथी बन गया, राजा रथ मे बैठ गया और घोडे पवन वेग से दौडने लगे । कानन की सुषमा को द्विगुणित करता हुआ रथ बहुत दूर निकल गया । राजा क्लान्त हो गया । शरीर से पसीना बहने लगा । विश्राम की आकाक्षा से उसने अपने प्रधानमन्त्री से कहा—किसी विश्राम-स्थल की ओर ले चलो । चित्त ने कहा—

निकट मे ऐसा स्थान और तो नही है, पर कुछ ही दूर अपना मृगवन उद्यान है। राजा ने कहा—चलो, उसी ओर। चित्त सारथी वातो ही वातो मे राजा को उद्यान ले आया। राजा रथ से उतरा। कुछ आश्वस्त हुआ। अचानक उसकी दृष्टि शिष्य-समुदाय सहित वैठे केशी श्रमण पर पडी। राजा के मुह से सहसा निकल पडा—चित्त ! ये जड-मूढ यहा कौन वैठे है ? ये कुछ श्रम करते हैं या यो ही निठल्ले वैठे हैं ?

प्रधानमन्त्री चित्त इस प्रश्न का क्या उत्तर देता, पर अगले ही क्षण उसने कहा—महाराज, ये लोग कहते हैं, आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म आदि को युक्ति-पुरस्सर सिद्ध करते हैं। ये देखो सैकडो-हजारो आदमी इसी तथ्य को सुनने और समझने के लिए यहा एकत्रित हुए है।

राजा—तव तो हमे भी इनके पास चलना चाहिए।

प्रधानमन्त्री—अवश्य, आपको ऐसा करना ही चाहिए।

दोनो चले और केशी श्रमण के पास आए। दूर से ही राजा ने उनका भव्य ललाट, सौम्य आकृति, वडे-वडे नेत्र, ब्रह्मचर्य का अद्भुत तेज और परिपार्श्व मे वैठे उनके शिष्य-समुदाय का शान्त और विनम्र वातावरण देखा तो वह चकित रह गया। उनके अध्यात्म की छाप स्वत उस पर पडी। राजा आया और केशी श्रमण के नातिसन्निकट और नातिदूर वैठ गया। केशी श्रमण ने राजा को लक्षित कर कहा—राजन् ! उद्यान मे प्रवेश करते ही तुझे ऐसा लगा न—ये जड-मूढ लोग यहा कौन वैठे हैं ?

राजा थोडा सकुचाया। वह सहसा अनुमान नही कर सका, हम दोनो की वात इन तक कैसे पहुच गई। दूसरे ही क्षण वह जान गया, यह उनके अध्यात्म का प्रखर तेज है। वह मन-ही-मन नतमस्तक हो गया। उसने कहा—क्या महाराज, आपकी यह मान्यता है, शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् है ?

केशी श्रमण—हा, यह ठीक है।

राजा—महाराज, मुझे यह सिद्धान्त सत्य नही लगा। इस सिद्धान्त के विरोध मे मेरे पास पुष्ट प्रमाण भी है। मेरे पितामह इस देश के राजा थे। वे वडे पापी थे। प्रतिक्षण वे पाप-कर्मों मे लिप्त रहते थे। आपके शास्त्रानुसार काल-धर्म को प्राप्त होकर, अवश्य वे नरक मे गए होगे। मुझे वे वहुत प्यार करते थे। मेरे हित-अहित, सुख-दु ख का वे पूरा ध्यान रखते थे। वास्तव मे ही यदि उनकी आत्मा शरीर छोड कर नरक मे गई है, तो मुझे सावधान करने के लिए वे अवश्य आते। मुझे वताते—पौत्र, पाप करने से नरक मे भयकर दु ख भोगने पडते हैं। तू ऐसा कभी न करना। किन्तु वे कभी नहीं आए। इससे यह प्रमाणित होता है कि उनकी आत्मा नरक मे नही गई है। शरीर के साथ उसका यहीं विनाश हो गया है। शरीर व्यतिरिक्त आत्मा का कोई पृथक् अस्तित्व नही है।

केशी श्रमण—राजन् ! अगर तेरी महारानी सूरीकान्ता के साथ कोई विलासी पुरुष दुराचार का सेवन करते पकडा जाए, तो तू उसे क्या दण्ड देगा ?

राजा—महाराज, मैं उस पुरुष के तत्क्षण हाथ-पैर काट डालू। शूली पर चढा दू या अन्य किसी प्रकार से अतिशीघ्र उसके प्राण ले लू।

केशी श्रमण—राजन्, यदि वह पुरुष तेरे से कुछ समय की याचना करे और कहे—मुझे अपने पारिवारिक जनो से मिल लेने दो। मै उन्हे शिक्षा दूगा कि दुराचार का फल ऐसा मिलता है, अत तुम सब इससे दूर रहना। क्या तू उसे उस समय थोडा अवकाश देगा ?

राजा—भगवन्, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? मैं उस अपराधी को दण्ड देने मे तनिक भी विलम्ब नही करूगा।

केशी श्रमण—राजन्, जिस तरह तू उस अपराधी को दण्ड देने मे विलम्ब नही करता, उसकी आर्त्त प्रार्थना भी नही सुनता, उसी प्रकार परमाधार्मिक देव नरक के जीवो को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं। क्षण-भर के लिए भी उन्हे नही छोडते। ऐसी स्थिति मे बता, तेरा पितामह तुझे सूचित करने के लिए कैसे आ सकता है ?

राजा—भगवन्, मेरी पितामही (दादी) श्रमणोपासिका थी। वह धर्म का तत्त्व अच्छी तरह समझती थी। जीव, अजीव आदि नो पदार्थों को वह सम्यक् प्रकार से जानती थी। दिन-रात धार्मिक कृत्यो मे लगी रहती थी। आपके शास्त्रानुसार वह अवश्य स्वर्ग मे गई होगी। वह भी मुझे बहुत प्यार करती थी। यदि उसका जीव शरीर से पृथक् होकर स्वर्ग मे गया होता, तो वह तो यहा अवश्य आती और मुझे पाप से होने वाले दुख और धर्म से होने वाले सुख का उपदेश देती। किन्तु उन्होने स्वर्ग से आकर कभी मुझे ऐसा नही समझाया। अत मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि उनका जीव उस शरीर के साथ ही नष्ट हो गया।

केशी श्रमण—राजन्, तू स्नान कर, अच्छे वस्त्र पहन, किसी पवित्र स्थान की ओर जा रहा है, उस समय यदि कोई शौचालय मे बैठा हुआ व्यक्ति तुझे वहा बुलाए, और थोडी देर वहा परामर्श करने के लिए कहे, क्या तू उसकी बात स्वीकार कर लेगा ?

राजा—नही भगवन्, ऐसा नही हो सकता।

केशी श्रमण—राजन्, इसी तरह स्वर्गीय आनन्द मे विभोर तेरी दादी दुर्गन्ध-मय और अपवित्र इस मर्त्य-लोक मे क्यो आना चाहेगी ?

राजा—भगवन्, एक दिन मैं अपनी राज्य-सभा मे बैठा था। मेरा नगर-रक्षक एक चोर पकड कर लाया। मैंने उसे जीवित ही लोहे की कुम्भी मे डाल दिया। ऊपर लोहे का मजबूत ढक्कन लगा दिया। सीसा पिघलाकर उसे चारो ओर से ऐसे निश्छिद्र बना दिया, जिससे उसमे वायु-सचार भी न हो सके। मैंने निगरानी रखी

चारो ओर पहरा देने लगे। कुछ दिनो बाद, मैंने उस कुम्भी को खुलवाया तो चोर मरा हुआ था। जीव और शरीर यदि अलग-अलग होते तो जीव बाहर कैसे निकल जाता ? कुम्भी मे राई जितना भी छिद्र नही था, इसलिए जीव के बाहर निकलने की कल्पना भी नही की जा सकती। शरीर के विकृत हो जाने से, उसका भी वह स्वरूप नही रहा। इन विभिन्न प्रमाणो और उदाहरणो से यह तो स्वत स्पष्ट है कि शरीर और जीव एक ही है।

केशी श्रमण—प्रदेशी, यदि पर्वत-चट्टान सदृश मजबूत एक कोठरी हो, चारो ओर से लिपी हुई हो, दरवाजे अच्छी तरह बन्द हो, कही से हवा घुसने के लिए भी छिद्र न हो उस कोठरी मे बैठा हुआ एक पुरुष जोर-जोर से भेरी बजाए तो शब्द बाहर निकलेगा या नही ?

राजा—हाँ भगवन्, निकलेगा।

केशी श्रमण—राजन्, कोठरी के निश्छिद्र होने से जिस तरह शब्द बाहर निकल जाता है उसी तरह जीव भी कुम्भी से बाहर निकल सकता है। वायु मूर्त है और जीव अमूर्त।

राजा—भगवन्, जीव और शरीर को अभिन्न सिद्ध करने के लिए मैं एक और उदाहरण प्रस्तुत करता हू। उससे मेरा अभिमत और भी पुष्ट होगा। एक चोर को मारकर मैंने लोहे की कुम्भी मे डाल दिया। मजबूत ढक्कन व सीसे से बन्द कर दिया। चारो ओर पहरा बैठा दिया। कुछ दिनो के बाद उसे खोलकर देखा तो कुम्भी कीडो से भरी हुई थी, पर उसमे कही छिद्र नही था। जिज्ञासा हुई, इतने कीडे कहा से आए ? मैं तो यह समझता हू कि ये सभी कीडे एक ही शरीर के अश थे। चोर के शरीर से ही वे बन गए। उनके जीव कही बाहर से नही आए।

केशी श्रमण—राजन्, तू ने अग्नि मे तपे हुए लोहे का गोला देखा होगा। अग्नि उसके प्रत्येक अग मे प्रविष्ट हो जाती है, पर गोले मे कही छिद्र नही होता। इसी प्रकार जीव भी बिना छिद्र के स्थान मे घुस सकता है। वह तो अग्नि से भी सूक्ष्म है।

राजा—भगवन्, धनुर्विद्या जानने वाला तरुण एक ही साथ पाच बाण फेंक सकता है। वही पुरुष बालक अवस्था मे इतना कुशल नही होता। इससे सिद्ध होता है कि जीव और शरीर एक हैं। शरीर-वृद्धि के साथ जीव की कुशलता, जो कि उसका धर्म है, बढती जाती है।

केशी श्रमण—राजन्, नया धनुष और नई डोरी लेकर वह पुरुष एक साथ पाच-पाच बाण फेंक सकता है, पर उसे पुराना धनुष और गली हुई डोरी दे दी जाए, तो वह उक्त कार्य मे सफल नही होगा। उपकरणो की कमी जिस प्रकार तरुण पुरुष

के कार्य मे बाधक है, उसी प्रकार बालक मे तत्सम्बन्धी शिक्षण का अभाव बाधक है। यदि वही बालक शिक्षण रूप उपकरण अर्जित कर लेता है, तो सरलता से उस तरुण पुरुष की तरह एक साथ पाच बाण फेकने मे सफल हो सकता है। बालक और तरुण मे होने वाला यह अन्तर जीव के ह्रस्वत्व व दीर्घत्व के कारण नही, अपितु तत्सम्बन्धी उपकरणो के होने और न होने से होता है।

राजा—भगवन्, एक तरुण पुरुष लोहे, सीसे या जस्ते के बडे भार को उठा सकता है, वही पुरुष जब बूढा हो जाता है, अगोपाग शिथिल पड जाते है, चलने के लिए लकडी का सहारा लेने लगता है और उस बडे भार को नही उठा सकता। यदि जीव भिन्न होता तो वृद्ध भी भार उठाने मे उसी प्रकार अवश्य समर्थ होता, जैसे कि वह अपनी युवावस्था मे होता है।

केशी श्रमण—राजन्, ठीक है। इतना बडा भार वह युवक ही उठा सकता है, पर उस युवक के पास भी यदि साधनो की अल्पता होती है, जैसे गट्ठर की चीजे बिखरी हुई हो, कपडा गला या फटा हो, डोरी या बास निर्बल हो, तो वह भी उसमे असमर्थ होगा। इसी प्रकार वृद्ध पुरुष भी बाह्य शारीरिक साधनो की अल्पता से भार उठाने मे असमर्थ है।

राजा—भगवन्, मैंने एक चोर को जीवित तोला। मरने के बाद फिर तोला। दोनो बार वजन समान था। यदि जीव अलग होता तो उसके निकलने के बाद वजन अवश्य कम होता। दोनो स्थितियो मे वजन का कुछ भी अन्तर न होना, मेरी मान्यता को पुष्ट करता है।

केशी श्रमण—राजन्, चमडे की मशक को वायु भरकर व वायु-शून्य करके तोला जाए, क्या वजन मे अन्तर आएगा ?

राजा—नही भगवन्, दोनो स्थितियो मे समान वजन रहेगा।[1]

केशी श्रमण—राजन्, जीव तो वायु से भी सूक्ष्म है। वायु गुरु-लघु है और जीव अगुरु लघु। अत उसके कारण वजन मे न्यूनाधिकता कैसे होगी ?

राजा—भगवन्, जीव है या नही, यह देखने के लिए मैंने एक चोर की चारो ओर से जाच-पडताल की, पर जीव कही दिखाई नही दिया। मैंने उसके दो टुकडे कर डाले और क्रमश खण्ड-खण्ड भी कर दिया। फिर भी जीव तो कही दिखाई नही पडा। इससे मेरा विश्वास पुष्ट हुआ कि आखिर शरीर से भिन्न जीव नही है।

केशी श्रमण—राजन्, तू तो उस लकडहारे से भी अधिक मूर्ख जान पडता

---

१ यह उदाहरण स्थूल दृष्टि से ग्राह्य हुआ है। वास्तविकता यह है कि शास्त्रीय दृष्टि से और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी वायु भारवान वस्तु है।

है, जिसने लकडी से आग निकालने के लिए उसके टुकडे-टुकडे कर डाले, फिर भी उसे आग उपलब्ध नही हुई और वह निराश हो गया। जीव शरीर के किसी अवयव विशेष मे नही है, वह तो सारे शरीर मे व्याप्त है। शरीर की प्रत्येक क्रिया उसीके कारण होती है।

राजा—भगवन्, भरी सभा मे मुझे आप मूर्ख कहते हैं, क्या यह आपके लिए उचित है ?

केशी श्रमण—राजन्, क्या तू जानता है, परिषद् (सभा) कितने तरह की होती हैं ?

राजा—हा। क्षत्रिय परिषद्, गृहपति परिषद्, ब्राह्मण परिषद् और ऋषि परिषद्। इस प्रकार परिषद् चार तरह की होती है।

केशी श्रमण—राजन्, क्या तुझे यह भी पता है, किस परिपद् मे कैसी दण्ड-नीति होती है ?

राजा—हा भगवन्, क्षत्रिय परिपद् मे अपराध करने वाला हाथ-पैर या जीवन से भी हाथ धो बैठता है। गृहपति परिपद् का अपराधी बाधकर आग मे डाल दिया जाता है। ब्राह्मण परिपद् के अपराधी को उपालम्भपूर्वक कुण्डी या श्वान के निशान से चिन्हित कर देश से निकाल दिया जाता है। ऋषि परिषद् के अपराधी को केवल प्रेमपूर्वक उपालम्भ दिया जाता है।

केशी श्रमण—इस तरह की दण्ड-नीति से परिचित होकर भी तू मुझसे यह प्रश्न पूछता है ?

केशी श्रमण से प्रतिबोध प्राप्त कर राजा प्रदेशी श्रमणोपासक बना और श्रावक के बारह व्रत अगीकार किए। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन किया और अपने अन्तिम समय मे समाधिपूर्वक अनशन कर शुभ भावो व अध्यवसायो के साथ काल-धर्म को प्राप्त होकर सूर्याभ नामक विमान मे उत्पन्न हुआ। वहा से अपना आयु शेष कर महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होगा।

३

पार्श्व-मणि और हतभागा ब्राह्मण

एक पहुचे हुए योगी के पास एक भूखा व आलसी ब्राह्मण पहुचा। उसके बहुत कुछ अनुनय-विनय के पश्चात् योगी प्रसन्न हुए और उन्होने अपनी झोली से एक चमकीली वस्तु निकाली और उसके हाथ मे रख दी। योगी ने कहा—इसका नाम पार्श्व-मणि है। यह लोहे को अपने स्पर्श-मात्र से स्वर्ण बना देता है। तू इसे ले जा। मनमाना स्वर्ण बना लेना और कल तक पुन. लौटा देना। ब्राह्मण का मन ललचाया। उसने सोचा, एक दिन मे कितना स्वर्ण बनाया जाएगा। यदि छ महीने यह मणि मेरे पास रह जाए, मेरा सारा दारिद्रय दूर हो सकता है। योगी से प्रार्थना की। योगी दयालु थे, अत उन्होने प्रार्थना स्वीकार कर ली। किन्तु योगी यह भी जानते थे, इस प्रकार की मणि से जो एक दिन मे अपनी चाह पूर्ण नही कर सकता, वह छ महीनो मे भी कैसे कर सकेगा ?

ब्राह्मण खुशी से फूला नही समा रहा था। नाना कल्पनाए करता, अपने घर पहुचा। वह सोच रहा था, अब मेरे घर सोने का ढेर लग जाएगा। दो-चार दिन खुशी-खुशी मे बीत गए। फिर सोचा, बाजार जाऊगा और लोहा खरीद कर लाऊगा। कुछ दिन सोचते-सोचते बीत गए। जब बाजार गया और लोहा खरीदने लगा, उसके मन मे आया, अभी तो लोहा महगा है। थोडे दिनो मे जब सस्ता होगा, खरीद लूगा। इस प्रकार दिन पर दिन और महीने पर महीने बीतते गए। एक दिन छ महीने की वह अवधि भी समाप्त हो गई। आलसी व हतभागा ब्राह्मण ज्यो का त्यो रहा। उसकी स्थिति मे कोई अन्तर नही पडा।

योगी ब्राह्मण के घर आए। उन्होंने उससे पार्श्व-मणि मागी। ब्राह्मण सहसा स्तम्भित-सा रह गया। उसके मुह से दीनता भरे स्वर निकल पडे—मैं तो अभी तक कुछ नहीं बना सका। योगी ने कहा—तेरे भाग्य मे यही बदा था। ब्राह्मण रोने-चिल्लाने लगा। योगी को फिर दया आई और उन्होने कहा—अब भी मैं तुझे एक अवसर और देता हू। तेरे पास कुछ भी हो, ले आ। मैं उसे स्वर्ण बना दूगा। ब्राह्मण दौडा, घर मे गया। चारो ओर चक्कर लगाए, पर उसे तनिक भी लोहा नही मिला। आखिर एक सुई लेकर लौटा और योगी के हाथो मे उसे थमाते हुए बोला—लो भगवन्, इसे सोने की बना दो।

४

एक दिन का राजा

एक राजकुमार और दो वणिक्-पुत्रो की अच्छी दोस्ती थी। तीनो साथ-साथ रहते, खेलते, पढते व आनन्दपूर्वक कालक्षेप करते। तीनो ही किशोरावस्था से तारुण्य की ओर वढ रहे थे। एक दिन वणिक्-पुत्रो ने राजकुमार से कहा—अपनी यह दोस्ती तो थोडे ही दिनो की है। जव तुम राजा वन जाओगे, किसी को भी याद नही करोगे। फिर अपना मिलना, इस प्रकार वातें करना सव असम्भव-सा हो जाएगा।

राजकुमार—नही, मैं ऐसा नही होने दूगा। अपनी दोस्ती के वीच वाधक कौन वनेगा ?

वणिक्-पुत्र—आज तो तुम्हारा प्यार हमको मिल रहा है, पर जिस दिन इस सिंहासन पर तुम आरूढ हो जाओगे, हमारे जैसो की वहा क्या गणना होगी ?

राजकुमार—नही मित्रो, प्रेम सदा विशुद्ध होता है और उसे कोई भी छिन्न-विछन्न नही कर सकता। मेरे हृदय मे तुम लोगो के प्रति आज जो भावना है, उसमे किसी प्रकार का भी कोई अन्तर नही आ सकता।

वणिक्-पुत्र—हा राजकुमार, आज तो तुम यही कहोगे, पर उस दिन जो परिस्थिति होगी, उसका उत्तर तुम आज थोडे ही दे सकते हो ?

राजकुमार—क्यो नही, जैसे तुम चाहो, मैं आज भी प्रतिज्ञावद्ध हो सकता हू।

वणिक्-पुत्र—राजा वनने के वाद क्या तुम हम दोनो को एक-एक दिन का राज्य दे सकते हो ?

राजकुमार—क्यो नही ? मैं अभी तुम दोनो के नाम से रुक्का लिख देता हू। जव मैं राजा वनू, तुम मेरे पास आना और मैं तुम्हे एक-एक दिन के लिए राजा घोपित कर दूगा।

वणिक्-पुत्रो ने राजकुमार के हाथ का लिखा हुआ रुक्का ले लिया। तीनो की मैत्री प्रतिदिन वढती ही गई। तीनो वडे हुए और अपने-अपने कार्यक्षेत्र मे उतर गए। राजा के देहावसान के वाद राजकुमार राजा वन गया और दोनो वणिक्-पुत्र व्यवसाय मे लग गए। तीनो को ही अपना व्यवसाय छोड, इधर-उधर आने-जाने का अवकाश कहा था।

एक दिन एक वणिक्-पुत्र अपने पुराने कागजात सम्भाल रहा था। राजकुमार

के हाथ का लिखा हुआ वह रुक्का अचानक उसके हाथ मे आ गया। उसने सोचा, रुक्का पुराना तो बहुत हो गया है। सम्भव है, लिखने वाले को अब याद भी न हो, पर प्रयत्न कर लेना तो उचित ही है। वह राजा के पास पहुचा। उसने रुक्का राजा के हाथ मे दिया। राजा को अपने हाथ से लिखे रुक्के का व अपने मित्र का स्मरण हो आया। उसने बडे प्रेम से आगन्तुक मित्र का सम्मान किया और कहा—जब चाहो एक दिन का राज्य ले सकते हो।

मित्र ने कहा—कल ही।

दूसरे दिन प्रात काल होते ही उद्घोषणा हो गई कि आज एक दिन के लिए, अमुक वणिक्-पुत्र राजा होगा। सारी जनता चकित रह गई। मन्त्री ने सोचा—एक दिन मे तो राज्य का चाहे जो किया जा सकता है। कही राज्य चौपट न हो जाए। वह सावधान हो गया। ज्यो ही वणिक्-पुत्र आया, मन्त्री ने अनुचरो को आदेश दिया, नए राजा साहब के खूब अच्छी तरह तेल-मर्दन किया जाए व स्नान करवाया जाए। खूब अच्छा भोजन बने, विश्राम हो और फिर सगीत व नृत्य का कार्यक्रम रखा जाए। वणिक्-पुत्र इसमे लुभा गया। उसने सोचा, राज-प्रासादो का यह आनन्द जीवन मे बार-बार थोडे ही मिलने को है। मन्त्री को समय व्यतीत करना था। दिन का करीब तीसरा पहर समाप्त हो गया। अब नए राजा को राज्य-सभा मे लाया गया और सभी प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियो से परिचय करवाया गया।

नए राजा ने पूछा—भण्डार मे धन कितना है ?

मन्त्री—महाराज, खजाना तो खाली है।

नया राजा—तो क्यो नही कर बढा दिए जाए ?

मन्त्री—हा महाराज, यह उचित ही है।

नया राजा—उद्घोषणा कर दो, आज से अमुक-अमुक वस्तुओ पर इतना कर बढा दिया गया है। शहर के बडे-बडे श्रीमन्तो को बुलाया जाए और रिक्त खजानो को, उनसे ब्याज पर रकम लेकर पूरा किया जाए।

मन्त्री—महाराज, रुपए किसके नाम से लिए जाए ?

नया राजा—मेरे नाम से।

मन्त्री ने बडे-बडे श्रीमन्तो को बुलाया और भण्डार भर लिया। सायकाल हुआ और मन्त्री ने फिर सगीत व नृत्य प्रारम्भ करवा दिया। आमोद-प्रमोद व विश्राम मे रात्रि पूर्ण हुई और दूसरे दिन वणिक्-पुत्र अपने घर पहुच गया।

देश मे ज्यो ही कर-वृद्धि की उद्घोषणा सुनी गई, जनता ने उसका तीव्र विरोध किया। सारे ही कहने लगे—यह क्या राजा आया है। इस प्रकार यदि कर-वृद्धि हुई तो यहा रहना दूभर हो जाएगा। एक ही दिन मे इस राजा ने सारा व्यवसाय

६

बन्दर का रोना

तीन-चार दिन का भूखा शेर जगल मे मारा-मारा घूम रहा था। वहुत-कुछ प्रयत्न करने पर भी शिकार पाने मे वह असफल रहा। आखिर उसे एक ढोग सूझा। वह फूंक-फूंककर पैर रखने लगा, ताकि किसी भी दर्शक के मन मे स्वत यह भाव उत्पन्न हो जाए—देखो, यह कितना साधु-पुरुष है। किसी भी प्राणी को सताना नही चाहता। फिर भी कोई पशु उसकी नजर नही पडा। वहुत दूर से वृक्ष पर वैठा एक वन्दर देखा। शेर जोर-जोर से फूक मारता हुआ उसी वृक्ष की ओर चला। वन्दर ने भी दूर से शेर महात्मा को आते देखा। उसे आश्चर्य हुआ। निकट आने पर वन्दर ने पूछा—क्या वात है ? जमीन फूक-फूककर कैसे चल रहे हो ?

शेर—जिन्दगी मे वहुत पाप किए। अव वूढा हो चला हू। सोचता हू, कुछ तो उस पाप का प्रायश्चित्त करू। जमीन पर वहुत सारे जीव-जन्तु होते हैं। यदि मैं फूक-फूककर पैर न रखू तो सम्भव है, उनकी हिंसा हो जाए।

बन्दर के मन मे आया—कितना पाप-भीरु महात्मा है। ससार मे ऐसे साधु तो विरले ही होगे। मुझे भी इनके चरण छूकर सुकृत कमाना चाहिए। वन्दर नीचे उतरा। ज्यो ही निकट पहुचा, शेर ने अवसर का लाभ उठाया। वन्दर को मुंह से पकड कर ऊपर उठा लिया। बन्दर को अव भान हुआ—मैं तो ठगा गया। तत्काल ही उसे एक उपाय सूझा। बन्दर ठहाका मारकर हंसने लगा। शेर को उसके हसने पर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—अरे ! एक ओर तो तू काल-कवलित है और दूसरी ओर तू हँस रहा है, आश्चर्य !

बन्दर ने कहा—इस समय हसने वाले को सीधा स्वर्ग मिलता है, महाराज ! इसलिए मैं हँस रहा हू। आप भी हसे तो आपको भी सीधा स्वर्ग मिल जाएगा।

शेर वन्दर की वातो मे आ गया और ठहाका मारकर हसने लगा। वन्दर ने भी अव अवसर देखा और एक ही छलाग मे वृक्ष की सर्वोपरि टहनी पर जा वैठा। उससे रहा नही गया और जोर-जोर से रोने लगा। शेर भी देखता ही रह गया। उसने सोचा, मैंने इसको ठगा तो इसने मुझे भी ठग लिया। तीन-चार दिनो के अति

श्रम के बाद तो भक्ष्य मिला और वह भी हाथ से निकल गया। इधर शेर ने देखा—बन्दर रो रहा है। शेर ने कहा—रोने के समय तो तू हस रहा था और अब जबकि तेरे प्राण बच गए, हसने का समय है, तू रो रहा है, यह तेरी उल्टी बात कैसी ?

बन्दर ने एक ही वाक्य मे उत्तर दिया—मैं इसलिए रो रहा हू, जगत मे आप जैसे सन्त पैदा हो गए है।

७

आनन्द श्रावक

वाणिज्य ग्राम नाम का एक नगर था। आनन्द गृहपति वहा रहता था। उसके पास १२ करोड स्वर्ण मुद्राए और ४० हजार गाए थी। वाणिज्य ग्राम नगर के पास कोलाक नाम का सन्निवेश था। वहा आनन्द गृहपति के अनेक स्वजन मित्र रहते थे। उस सन्निवेश मे एक बार भगवान् श्री महावीर आए। वहाँ जितशत्रु राजा वन्दन करने के लिए गया। सवाद पाकर आनन्द गृहपति भी वहाँ गया। सभी ने शान्त चित्त प्रवचन सुना। प्रवचन के पश्चात् राजा तथा अन्य लोग अपने-अपने स्थान गए। आनन्द वहाँ रुका रहा और उसने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावक-धर्म अगीकार किया।

१४ वर्ष तक वह श्रावक पर्याय पालता रहा। १५वे वर्ष मे अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपना सारा दायित्व सम्भलाकर, पौषधशाला मे रह कर, एकादश श्रावकपडिमा की आराधना करने लगा। शरीर मे शैथिल्य का सचार होते देखकर उसने आमरण अनशन ग्रहण कर लिया। उस आमरण अनशन से उसे सुविस्तृत अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ। जिससे वह उत्तर मे चूल हेमवन्त पर्वत तक, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व मे पाच सौ योजन लवण समुद्र तक, ऊपर सौधर्म देवलोक तक और अधो प्रथम नरक के 'लोलुच' नरकावास तक देखने और जानने लगा।

उन्ही दिनो भगवान् श्री महावीर उद्यान मे आए। गोतम स्वामी तेले की तपस्या पूर्ण कर भगवान् श्री महावीर से आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए नगर मे आए। नगर मे आनन्द श्रावक के आमरण अनशन की जब चर्चा सुनी, तो देखने का भाव उनके मन मे उत्पन्न हुआ। वे आनन्द की पौषधशाला मे आए। आनन्द ने शारीरिक असामर्थ्य के कारण लेटे-लेटे ही वन्दना की और चरण स्पर्श किया। आनन्द ने कहा—भगवन् गोतम, क्या आमरण अनशन मे गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

गोतम—हाँ, हो सकता है।

आनन्द—मुझे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है और वह पूर्व और पश्चिम आदि दिशाओ मे इतना विशाल है।

गोतम—आनन्द, गृहस्थ को इतना विशाल अवधिज्ञान नही मिल सकता। अनशन मे तेरे से यह मिथ्या सम्भाषण हुआ है, अत तू इसकी आलोचना या

प्रायश्चित्त कर।

आनन्द—प्रभो! महावीर प्रभु के शासन मे सत्याचरण का प्रायश्चित्त होता है या असत्याचरण का ?

गोतम—असत्याचरण का।

आनन्द—प्रभो! आप ही प्रायश्चित्त करे। आप ही से असत्याचरण हुआ है।

आनन्द की इस दृढतापूर्ण वार्ता को सुनकर गौतम स्वामी सम्भ्रान्त हुए। वहा मे चलकर महावीर प्रभु के पास आए और वह सारा वार्तालाप उन्हे कह सुनाया। भगवान् महावीर ने कहा—गोतम! तुम्हारे से ही असत्याचरण हुआ है। तू आनन्द के पास जा और उससे क्षमा-याचना कर।

गोतम स्वामी तत्काल आनन्द के घर आए और कहा—आनन्द! भगवान् महावीर ने तुझे ही सत्य कहा है। मैं वृथा विवाद के लिए तेरे से क्षमा चाहता हूँ।

ॐ

८

उपकरणों मे छुपा रत्न

एक धनिक-पुत्र ने दीक्षा ली। दीक्षा लेते समय उसके मन मे पूरा-पूरा वैराग्य था, पर उसमे एक शल्य भी था। वह सोचता था, दुर्भिक्ष आदि की स्थिति मे भिक्षा न मिले या अन्य कोई ऐसी परिस्थिति आ जाए तो उसके निवारण के लिए एक बहुमूल्य रत्न मुझे अपने पास रख लेना चाहिए। इस मन की दुर्बलता को उसने कही कहा नही। एक रत्न चुपचाप अपने पास रख लिया और दीक्षा ले ली। वह पढा, लिखा और बहुश्रुत हुआ। अनेक साधुओ का गुरु बन गया, पर किसी को उसके छिपे रत्न का कोई पता नही। एक विज्ञ श्रावक ने अपने गुरु की कमजोरी को पकडा। वह सोचने लगा—गुरुवर्य परिषद् मे बैठकर जिस विषय पर बोलते है उसकी कलि-कलि खोल देते है। अहिसा, सत्य आदि चार महाव्रतो पर वे बहुधा बोलते है किन्तु अपरिग्रह की बात आने पर उनकी जीभ दब जाती है। वे कहते है, परिग्रह भी बहुत बुरा है। इस दबी जबान के पीछे कुछ गोलमाल अवश्य है।

गुरु और अन्य साधु शौचादि के लिए बाहर गए थे। उपाश्रय सूना था। श्रावक आया और उसने गुरु के सारे वस्त्र टटोले। बहुमूल्य रत्न उसे पा गया। श्रावक ने सोचा—अपरिग्रह का नाम आते ही गुरुजी की जबान दबती थी। उनकी जबान पर यही तो फोडा था। श्रावक रत्न लेकर चलता बना। गुरु उपाश्रय मे आए और सदा की भाति गुप-चुप अपने रत्न को सम्भाला। गुरु ने सोचा, चलो अच्छा हुआ दुविधा मिटी। मेरे मन से यह छूटता नही था, सहज ही मैं अब पूरा निर्ग्रन्थ हो गया हू।

अगले दिन परिषद् मे गुरु आकर बैठे। लगे अपरिग्रह पर जोर-शोर मे बोलने। सग्रह के दोषो की उन्होने मुक्त कठ से भर्त्सना की। वह श्रावक भी सामने बैठा था। तडाकेदार 'तहत्त वाणी' की झड लगा रहा था। गुरु ने समझ लिया, यही मेरे रत्न का अपहर्ता मालूम होता है।

व्याख्यान के बाद श्रावक गुरुवर्य के पास आया और बोला—आज आपने अपरिग्रह की असाधारण व्याख्या की। गुरु मुस्कुराए और बोले, तेरी ऐसी ही तो मनसा थी। श्रावक बोला, गुरुदेव क्षमा करना, आप महान् है। गुरु ने कहा, मै तो तेरा उपकार ही मानता हू।

परिशिष्ट

२

पारिभाषिक शब्द-कोष

अक्रिया	कर्मबन्ध का अकारण—निवृत्ति
अचित्त	निर्जीव पदार्थ ।
अजीव	अचेतन पदार्थ ।
अणुव्रत	अहिंसा, सत्य आदि के आंशिक व्रत ।
अधर्मास्तिकाय	जड व चेतन पदार्थों की स्थिति मे साधारण रूप से सहायता करने वाला लोकव्यापी अमूर्त द्रव्य ।
अनगार	साधु ।
अनन्त	अन्त रहित ।
अनन्त चतुष्टय	अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त वल ।
अनवद्य	पाप रहित—निरवद्य ।
अनशन	आहार-परिहार ।
अन्तरायकर्म	दान आदि मे वाधा डालने वाला कर्म ।
अप्काय	अप्-शरीरावयवी जीवो का समुदाय ।
अप् (अपकाय)	कथा प्रसग मे आए छ वालको मे एक वालक ।
अप्रतिबद्धविहारी	वायु की तरह जिसके विहरण मे किसी प्रकार का प्रतिवन्ध न हो ।
अरिहन्त	नमस्कार मन्त्र के प्रथम पदासीन । राग, द्वेष, मोह आदि शत्रुओ का क्षय करने वाले तीर्थंकर ।
अर्हत्	देखे, अरिहन्त ।
अरूपी	रूप, रस, गन्ध, वर्ण, स्पर्श रहित—अमूर्त ।
अलोक	लोक का अभाव, केवल आकाशमय ।
असिद्ध	ससारी ।
आकाशास्तिकाय	लोकालोक व्यापी समग्र आकाश ।
आगम	आप्त पुरुष के वचन से होने वाला अर्थ-बोध । 'जैन-शास्त्र' आगम कहलाते है ।
आचार्य	सघ के सर्वोपरि अधिशास्ता ।

आचार्य की आठ सम्पदा	(१) आचार सम्पदा, (२) श्रुत मम्पदा, (३) शरीर सम्पदा, (४) वचन सम्पदा, (५) वाचना सम्पदा, (६) मति सम्पदा, (७) प्रयोगमति सम्पदा (शास्त्रार्थ विशेषज्ञता) और (८) सग्रह परिज्ञा सम्पदा (स्थान, शय्या आदि का व्यवस्था वैशिष्ट्य)।
आणपाण	श्वासोच्छ्वास।
आनन्द	भगवान् श्री महावीर का बारह व्रतधारी श्रावक।
आभियोगसुर	व्यन्तर, ज्योतिष्क व वैमानिक देवो मे वे देव जिनका कार्य अन्य देवो की सेवा करना है।
आर्जव	सरलता। धर्म के दश प्रकार मे एक प्रकार।
आर्त्तध्यानी	रोगादि कष्टो मे व्याकुल होने वाला तथा वैषयिक सुख-पूर्ति के लिए दृढ सकल्प करने वाला।
आर्हत्मत्	अरिहन्तो का दर्शन—जैन-दर्शन।
आस्रव	जीव का वह परिणाम जो शुभ तथा अशुभ कर्म-पुद्गलो को आकृष्ट कर उनको आत्म-प्रदेशो के साथ घुला-मिला देता है, उसे आस्रव—कर्मागमन का द्वार कहते है।
आस्तिक	पुनर्जन्म मे विश्वास रखने वाला।
इंगियागार सम्पन्ने	इगिताकार सम्पन्न।
इन्द्रिय	जिनके द्वारा अपने-अपने नियत विषय का ज्ञान होता है, उन्हे इन्द्रिय कहा जाता है। वे पाँच है—श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन और स्पर्शन।
उपाध्याय	अग और उपागो के पाठ्यक्रम के सचालक (प्रवचन-सरक्षक)।
एक देह चेतन अनन्त	एक शरीर मे अनन्त जीव।
कर्म	आत्मा की सत् एव असत् प्रवृत्तियो के द्वारा आकृष्ट एव कर्म रूप मे परिणत होने योग्य पुद्गल।
कषाय	कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ रूप परिणाम।
काङ्क्षा	अन्य मत की वाछा करना।
कायस्थिति	किसी एक ही काय (निकाय) मे मरकर पुन उसी मे जन्म ग्रहण करने की स्थिति।

काल	समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, सम्वत्सर, युग, पल्योपम, सागर, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्तन आदि ।
क्रिया	कर्म-बन्ध का कारण—प्रवृत्ति ।
क्षमत क्षामन	हृदय की सरलता से अपराधो के लिए किया जाने वाला क्षमा का आदान-प्रदान ।
क्षमाश्रमण	आचार्य आदि गुरु-जन ।
क्षान्ति	क्षमा । धर्म के दश प्रकार मे एक प्रकार ।
खेयन्ने	खेदज्ञ ।
गण	कुल का समुदाय—दो आचार्यों के शिष्य-समूह ।
गणाधिप	शिष्य-समूह के प्रमुख आचार्य ।
गति	नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव । गति का अर्थ है—नरक आदि पर्यायो की प्राप्ति ।
गाथापति	गृहपति—विशाल ऋद्धि-सम्पन्न परिवार का स्वामी।
घन-उदधि	वर्फ की तरह गाढे पानी का समुद्र ।
घर-फरसाना	दान-लाभ देना ।
चार्वाक	नास्तिक ।
चित्राम	स्वर्ग, नरक के चित्र ।
चेतन	ज्ञान-दर्शन युक्त ।
छव काया	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।
जगम	चलने फिरने वाले प्राणी ।
जाति	इन्द्रिय और इन्द्रिय-रचना के आधार पर होने वाले जीवो के पाच विभाग । जिन्हे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय कहा जाता है ।
जी भाई !	साधु द्वारा नमस्कार के प्रत्युत्तर मे कहा जाने वाला स्वीकारात्मक शब्द । 'यह तुम्हारा जीताचार (कर्तव्य) है' का सक्षिप्त रूप ।
जीव	जिसमे चेतना का व्यापार—उपयोग होता है ।
तिक्खुत्तो	साधु को नमस्कार करते समय बोलने का पाठ ।
तीन तत्त्व	पारमार्थिक वस्तु को तत्त्व कहा जाता है । तत्त्व

	तीन है, देव—(वीतराग), गुरु—(निग्रन्थ), धर्म—(सर्वज्ञ प्ररूपित) ।
तीर्थंकर	तीर्थ की स्थापना करने वाले अरिहन्त ।
तेउ (तेउकाय)	कथा प्रसग मे आए छ बालको मे एक बालक ।
तेउकाय	अग्नि-शरीरावयवी जीवो का समुदाय ।
त्रस	हित की प्रवृत्ति और अहित की निवृत्ति के निमित गमन करने वाले जीव ।
त्रस	कथा प्रसग मे आए छ बालको मे एक बालक ।
दान्ति	इन्द्रिय-दमन ।
देवलोक	स्वर्ग ।
द्रव्य	वस्तुए ।
धर्म-उपकरण	छ काय के आरम्भ से निवृत्त साधु के व्यवहार मे आने वाली आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि सामग्री ।
धर्म-ध्यान	आज्ञा, अपाय, विपाक एव सस्थान का निर्णय करने के लिए जो चिन्तन किया जाए ।
धर्मास्तिकाय	जड व चेतन पदार्थों को गति मे असाधारण रूप से सहायता करने वाला लोक-व्यापी अमूर्त द्रव्य ।
नरक	घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पापो का फल भोगने के लिए अधोलोक के जिन स्थानो मे उत्पन्न होते हैं, वे स्थान ।
नवकार	नमस्कार महामन्त्र ।
नियमा	निश्चितता ।
निर्जरा	तपस्या के द्वारा कर्म-मल के विच्छेद से होने वाली आत्म-उज्ज्वलता ।
पचम गुण स्थान	आत्मा की क्रमिक विशुद्धि को गुणस्थान कहा जाता है । उनकी सख्या १४ है । देशविरत श्रावक के लिए पाचवा गुण स्थान है ।
पण्डित-मरण	विषय भोगो से निवृत्त हो कर चारित्र मे अनुरक्त रहने वाली आत्मा की आकुलता रहित व अहिसक भाव मे मृत्यु ।
परपाखण्ड-स्तवना	मिथ्यादृष्टि और व्रत भ्रष्ट पुरुषो की प्रशसा करना ।

परमेष्ठी पचक	परम-उत्कृष्ट स्वरूप अर्थात् आध्यात्मिक स्वरूप मे स्थित आत्मा। वे पाच हैं, अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।
परिषह	कर्म निर्जरा के लिए क्षुधा, तृषादि कष्टो को सहन करना।
पर्याप्त	स्वयोग्य पर्याप्तियो (पौद्गलिक शक्तियो) से पूर्ण।
पाच पर्याप्ति	जन्म के प्रारम्भ मे होने वाले पौद्गलिक शक्ति के निर्माण को पर्याप्ति कहा जाता है। वे छ होती है, आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। मन और भाषा की एकात्मकता के कारण देवयोनि मे पाच पर्याप्तिया होती हैं।
पात्र-दान	साधु को दिया जाने वाला दान।
पाप	अशुभ कर्म। उपचार से पाप के हेतु भी पाप कहलाते हैं, जो प्राणातिपात आदि अठारह हैं।
पापश्रमण	जो कार्य साधु के करने योग्य न हो, उन्हे करने वाला साधु।
पुण्य	शुभ कर्म। उपचार से जिस निमित्त से पुण्य वन्ध होता है, वह भी पुण्य कहा जाता है।
पुद्गल	रूपवान् जड पदार्थ।
पृथ्वी (पृथ्वीकाय)	कथा प्रसग मे आए छ बालको मे एक बालक।
पृथ्वीकाय	पृथ्वी-शरीरावयवी जीवो का समुदाय।
प्रदेश	आत्मा के अविभागी अवयव।
प्रासुक	निर्दोष।
बादर	स्थूल शरीर वाले जीव।
बारहवा व्रत	श्रावक का अतिथि-सविभाग व्रत। अतिथि का अर्थ है—साधु-श्रमण। आत्मा की अनुग्रह बुद्धि से पात्र महाव्रतधारी साधु को दान देना अतिथि-सविभाग है।
भदन्त	भगवान्।
भवप्रत्यय अवधिज्ञान	इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के सहारे होने वाला ज्ञान—अवधिज्ञान कहलाता है। वह दो प्रकार का होता है—भवप्रत्यय और क्षयोपशम निमित्त। देवता और नारको को होने वाला भव-

	सम्बन्धी ज्ञान भव-प्रत्यय अवधिज्ञान कहलाता है।
भावितात्मा	सयमरत।
भैक्षव संघ	आचार्य भिक्षु द्वारा प्रवर्तित तेरापन्थ साधु-समुदाय।
मंगल	अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म, ये चार मगल रूप है।
मत्थेन वदामि हाथ जोड सुखसाता	श्रावक द्वारा साधु को नमस्कार करते समय बोला जाने वाला वाक्य। जिसका अर्थ है—मस्तक झुका कर नमस्कार करता हुआ, आपसे कुशल प्रश्न पूछता हूँ।
महाव्रत	अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पूर्ण पालन।
मार्दव	विनम्र वृत्ति। धर्म के दश प्रकार मे एक प्रकार।
मिथ्यादुष्कृत	दुष्कृत मिथ्या हो—प्रायश्चित्त पाठ।
मुहपत्ति	मुखवस्त्रिका।
मुहुर्तान्तर	(अन्तर्मूहूर्त)–दो समय से लेकर मुहूर्त (४८ मिनट) से एक समय कम तक का काल।
मोहनीय कर्म	वे कर्म-पुद्गल जो आत्म-गुण दर्शन और चारित्र का घात करते हैं।
रज्जू	असख्य योजनात्मक एक मान विशेप।
रजोहरण	साधुओ के भूम्यादि प्रमार्जन का उपकरण।
रत्नत्रयी	सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन व सम्यग् चारित्र।
रूपी	जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श युक्त व मूर्त्त हो।
लाघव	अकाञ्चन्य भाव। धर्म के दश प्रकार मे एक प्रकार।
लोक	षड्द्रव्यात्मक विश्व।
लोकोत्तम	लोक मे उत्तम, अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म।
लोच	केश-लुञ्चन।
वणस्सइ	वनस्पतिकाय।
वन्दना	पच पद वन्दना।
वनस्पतिकाय	वनस्पति-शरीरावयवी जीवो का समुदाय।
वनस्पतिकाय	कथा प्रसग मे आए छ बालको मे एक बालक।

वर्षावास	चातुर्मास ।
वायु (वायुकाय)	कथा प्रसग मे आए छ बालको मे एक बालक ।
वायुकाय	वायु-शरीरावयवी जीवो का समुदाय ।
विग्रहगति	योन्यन्तर मे जाने वाले जीव की वक्र गति ।
विचिकित्सा	धर्म के फल मे सन्देह करना ।
विराधक	जो व्यक्ति अपने दुष्कृत्यो का प्रायश्चित्त करने मे पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।
वेदना	कर्म-भोग ।
वैक्रिय शरीर	जो शरीर विविध व विशिप्ट प्रकार की क्रियाये करने मे समर्थ हो ।
व्रत निपजाना	दान-लाभ देना ।
शंका	तत्त्वो मे सन्देह करना ।
शम	अपनी वृत्तियो को शान्त रखना ।
शरण	अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म, ये चार शरण रूप है ।
शुक्ल-ध्यान	निर्मल प्रणिधान—समाधि-अवस्था ।
श्रम	अपने परिश्रम से अपना उत्थान ।
श्रावक	सम्यग् दर्शन सहित आशिक व्रताराधना करने वाला ।
श्रावक के पाच अभिगमन	साधु के स्थान मे प्रविप्ट होते ही श्रावक द्वारा आचरण करने योग्य पाच नियम—अभिगमन कहलाते है । वे है—सचित्त द्रव्यो का त्याग (२) उचित्त द्रव्यो को मर्यादित करना (३) उत्तरासग करना (४) साधु दृप्टि-गोचर होते ही हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना ।
षट्काय	देखे, छवकाय ।
षट्-द्रव्य	धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ।
सथारा	अन्तिम समय मे आहारादि का परिहार ।
सवर	नौ तत्त्व मे मे एक तत्त्व जो कर्म-प्रवाह को रोकता है ।
सचित्त	सजीव पदार्थ ।
सद्धा परम दुल्लहा	श्रद्धा परम दुर्लभ ।

सन्नी (सज्ञी)	जिसमे भूत, भविष्य एव वर्तमान काल सम्बन्धी विचार-विमर्श करने की सज्ञा हो।
सम	ममताभाव।
सम्मत रयण	सम्यक्त्व रत्न।
सम्यक्त्व	यथार्थ तत्त्व-श्रद्धा।
सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चरण	जैनधर्म के अनुसार सम्यग् दर्शन (श्रद्धा), सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र मोक्ष आराधना के ये तीन प्रकार है।
सर्वज्ञ	त्रिकालदर्शी।
सामायक	एक मुहूर्त तक पापकारी प्रवृत्तियो का त्याग। श्रावक का नवा व्रत।
सिद्ध	सर्वथा कर्म रहित।
सूत्रकृताग	ग्यारह अगो मे दूसरा अग।
स्थानाग	ग्यारह अगो मे तीसरा अग।
स्थावर	पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के जीव।